

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

विचार का जनग्राह्य होना जरूरी है

कोई विचार चाहे अच्छा ही या बुरा, वह सफल हुआ तभी माना जायेगा जब वह जनमानस में अपना स्थान बना ले। भीड़ जो कुछ करती है, वह सब बराबर अच्छा ही ही, यह जरूरी नहीं। इसी तरह कुछ लोग जो यह कहते हैं कि अहिंसा तो अनिवार्यतः व्यक्ति का धर्म है, वह भी ठीक नहीं है। इसके विपरीत अहिंसा में किसी की आस्था की सचाई का मापदण्ड यह है कि उसे जनसाधारण किस सीमा तक स्वीकार करता है। यदि अहिंसा जनसाधारण को प्रभावित नहीं कर सकती तो व्यक्तियों द्वारा उसकी उपासना करना बिल्कुल बेकार है। अहिंसा को मैं ईश्वर की सबसे बड़ी देन मानता हूं। ईश्वर की सारी देन पर उसकी सृष्टि के सभी प्राणियों का समान अधिकार है। उस पर संसार-त्यागी संन्यासियों और संन्यासिनियों का एकाधिकार नहीं होता। वे अहिंसा में विशेषज्ञता भले ही प्राप्त कर लें, वे भले ही हमें इसके आश्चर्यजनक प्रभावों से अवगत कराएँ, लेकिन अगर उनकी खोज और उनका दावा सही है तो उसे जन-ग्राह्य भी होना चाहिए। यदि सत्य पर कुछ थोड़े-से लोगों की इजारेदारी नहीं हो सकती तो अहिंसा पर ही, जो सत्य का ही दूसरा रूप है, क्यों होनी चाहिए? मैंने दुनिया के धर्मग्रंथों का अध्ययन बड़ी श्रद्धापूर्वक किया है और उस अध्ययन के आधार पर मैं इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि इन सभी धर्मग्रंथों में इस बात के जोरदार और स्पष्ट साक्ष्य मौजूद हैं कि अहिंसा का पालन सभी कर सकते हैं—और सौ भी अलग-अलग व्यक्तियों के रूप में ही नहीं, बल्कि एक सभ्य समुदाय के रूप में भी।

(यंग इंडिया, 24-4-1930)

—महात्मा गांधी

सर्वोदय जगत

अहिंसक क्रान्तिका पाक्षिक मुख-पत्र

वर्ष : 37, अंक : 16

1-15 अप्रैल, 2014

सर्व सेवा संघ

द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्तिका पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक

बिमल कुमार

मो. 9235772595

प्रसार व्यवस्थापक

उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये

शुल्क

वार्षिक : 100 रुपये

आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)

फोन : 0542-2440-385/223

ईमेल: sarvodayajagat@gmail.com

sarvodayavns@yahoo.co.in

Website : sssprakashan.com

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये

आधा पृष्ठ : 1000 रुपये

चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. दो कविताएं... 2
2. विरासत को आगे बढ़ाने... 3
3. पुलिस के भरोसे शान्तिता... 4
4. राष्ट्र से महत्त्वपूर्ण कुछ... 6
5. जिस एक रचना ने देश... 8
6. भारत का पितामह बनने... 9
7. पर्यावरण और चुनावी... 11
8. रक्षासूत्र आंदोलन के... 12
9. इस खेती से मिलता है... 14
10. भूख अजगरी... 15
11. पूंजीवाद का यथार्थ... 16
12. प्रकृति की स्नेहकन्या... 17
13. भूमि सुधार को लाल... 19
14. प्रमाण बिना निर्णय भी... 20

केशव शरण की दो कविताएं

एक : मेंढक-मेंढकी की शादी

दो : उपजाऊ खेत

मेंढक-मेंढकी की
शादी हो गयी
धूमधाम से
विधिवत मंत्रोच्चार से
जिसकी फोटो छपी
हर अखबार में
और अवगत
दूर-दूर की आबादी हो गयी
नौआ पोखरा पर
मेंढक-मेंढकी की
शादी हो गयी
सबसे ज्यादा खुशी हुई
नौआ पोखरे को
उसे लगा
टोटका काम कर जायेगा
वह पानी और प्रसन्नता से भर जायेगा
इसी तरह
थोड़ी-थोड़ी खुशी
सबको हुई
जो पानी-पानी
कह रहे थे
और सतत पैतालीस डिग्री का तापमान
सह रहे थे
वे अब भी सह रहे हैं
वे अब भी
पानी-पानी कह रहे हैं
लगता है मेंढक-मेंढकी की शादी
उनकी इच्छा के विरुद्ध थी
इसलिए उन्होंने हनीमून मनाया नहीं
और मानसून आया नहीं।

उपजाऊ खेत
इतनी उपज दे जाते
कि वर्ष-भर के लिए
किसान निश्चिंत हो जाते
और फुरसत में चौपाल लगाते
उपजाऊ खेत
इतनी उपज दे जाते
कि अतिरिक्त को बेचकर शहर में
किसान नमक-मसाला, कपड़ा-लत्ता
गृहस्थी के सामान घर ले आते
लेकिन शायद इससे ज्यादा कुछ न पाते
नहीं तो वे क्यों बेच जाते
अपने उपजाऊ खेत
बिकते-बिकते
अब गोभी, आलू, टमाटर के
कुछ प्लॉट रह गये हैं शेष
कल वे भी दृश्यांतरित हो जायेंगे
कुछ और ऊंची कीमत पाकर
वहां भी छोटे-बड़े मकान नज़र आयेंगे
जिन्हें लोग बतायेंगे अपना घर
और वे घर
स्वर्ग हों या नर्क
महानगर का हिस्सा हो जायेंगे
तब गोभी, आलू, टमाटर के इन खेतों में
गोभी, आलू, टमाटर की टिकिया बिकेंगी
और बहुत कुछ
जो चाहिए
जबकि अपने समाप्त क्रिस्से के बाद
उपजाऊ खेतों की आत्माएं
कहीं दूर जंगलों में मँडरायेंगी
एक नया आकार पाने के लिए।

जब कोई नयी पीढ़ी विरासत सँभालती है तो उसके समक्ष दो चुनौतियां होती हैं। एक, विरासत को आगे बढ़ाने की, तथा दूसरी, अगर पूर्व काल में कुछ समस्याएं खड़ी हुई थीं, तो उनका समाधान करने की। कभी-कभी पुरानी समस्याओं को सुलझाने में इतना वक्त जाया हो जाता है कि विरासत को आगे बढ़ाने के काम में ढिलाई आने लगती है। अतः इन दोनों तरह के कामों में सही संतुलन बनाये रखने की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

पूर्व काल की समस्याओं का इस रूप में ही समाधान करना होगा कि संगठन की सत्य निष्ठा व अहिंसा निष्ठा और अधिक मजबूती से स्थापित हो। संगठन को विश्वसनीयता तथा नैतिक आधार को और अधिक बल मिलना चाहिए। इस संदर्भ में गांधीजी की इस बात का सदैव स्मरण रखना चाहिए कि 'Organisation is the test of non-violence.' अर्थात् संगठन अहिंसा की कसौटी है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो तंत्र अहिंसक समाज की स्थापना के लिए कृत-संकल्प हो, उस तंत्र के अपने संचालन में कितनी अहिंसा है, यह सर्वाधिक महत्त्व का विषय होना चाहिए। अहिंसा का यह तत्व संगठन में पांच स्तरों पर प्रकट होना चाहिए। एक, तंत्र की प्रेरणाशक्ति के रूप में, दूसरे, निर्णय प्रक्रिया में, तीसरे, मतभेद निराकरण में, चौथे, जिम्मेदारी के वितरण एवं कार्य संपादन में तथा पांचवें, किसी भी स्तर पर जिम्मेदारी को सत्ता न समझने के रूप में।

आज हमारे सामने राजसत्ता के संगठन का तथा पूंजीवाद के संगठन का स्वरूप प्रमुख रूप से विद्यमान है। राजसत्ता सैन्य शक्ति एवं दण्ड शक्ति आधारित है जबकि पूंजीवाद लोभ-लाभ प्रेरित तथा शोषण-दोहन की व्यवस्था

पर टिका है। अतः ये दोनों ही मॉडल हमारे किसी काम के नहीं हैं। इनसे प्रभावित होने या इनके मॉडल के किसी भी पक्ष को स्वीकार करने से, हर स्तर पर बचना होगा।

जहां तक विरासत को आगे बढ़ाने का सवाल है, हमें गांधी-विनोबा-जेपी से जो विरासत मिली है वह हमारी सबसे बड़ी पूंजी है। स्वदेशी, शरीर-श्रम निष्ठा, ट्रस्टीशिप व ग्राम-स्वराज्य के मूल्यों को केन्द्र में रखना होगा। इसके लिए, फिलहाल तीन स्तरों पर अधिक फोकस करने की जरूरत है। पहला, आगे के जन आंदोलनों को खड़ा करने की रूपरेखा, दूसरे, वैकल्पिक रचना के कार्य को गति देने का काम तथा तीसरे, नये कार्यकर्ता निर्माण का कार्य।

आज के संदर्भ में दो तरह के आंदोलनों को एक साथ खड़ा करने का प्रयास करना होगा। एक तो व्यापक लोकतांत्रिक आंदोलन, जिनसे लोगों की शक्ति भी प्रकट होती है तथा लोगों की भावना भी प्रकट होती है। ऐसे आंदोलन आज की व्यवस्था में परिवर्तन की जरूरत को रेखांकित करते हैं, साथ ही स्वीकृत अवधारणाओं में नया अर्थ भरने का भी काम करते हैं। वास्तविक स्वराज्य कैसा होगा, यह बात विमर्श में आने लगती है। लोकसत्ता निर्माण की दिशा में सत्याग्रह या लोक-आंदोलन का महत्त्व गांधीजी ने भी रेखांकित किया था। "सच्चा स्वराज्य मुट्ठी भर लोगों द्वारा सत्ता हासिल करने से नहीं, बल्कि सत्ता का गलत इस्तेमाल होने पर जनता द्वारा उसका प्रतिकार करने की ताकत हासिल करने से आयेगा।"

सिर्फ यह ध्यान रखने की बात होगी कि इन जन-आंदोलनों से किसी केन्द्रीकृत श्रेणीबद्ध संगठन का जन्म न हो बल्कि लोक-संगठनों की शृंखलाओं का निर्माण हो। दूसरे

तरह के आंदोलन सघन क्षेत्र केन्द्रित आंदोलन हों। ऐसे आंदोलन उन क्षेत्रों में खड़े करने होंगे जहां के श्रम एवं प्राकृतिक जीवन-आधारों का शोषण व दोहन हो रहा है। इन्हें हम जल-जंगल-जमीन-खनिज स्वराज्य आंदोलन कह सकते हैं। प्राकृतिक जीवन-आधारों पर आश्रित उत्पादक श्रम करने वाले समुदायों के बीच स्वराज्य के लिए संघर्ष व रचना का कार्य इन्हीं क्षेत्रों में होगा।

इस प्रकार व्यापक लोकतांत्रिक आंदोलन एवं सघन क्षेत्र केन्द्रित आंदोलन मिलकर ही व्यवस्था परिवर्तन का, संपूर्ण क्रांति का आंदोलन बन सकेंगे।

इन सघन क्षेत्रों में ही वैकल्पिक रचना का कार्य भी बढ़ाना होगा। ये सघन क्षेत्र न केवल राजसत्ता एवं पूंजीवादी व्यवस्था के शोषण-दोहन को नकारेंगे, बल्कि नीचे से वैकल्पिक रचना खड़ा करने का भी केन्द्र बनेंगे। इस प्रकार इन क्षेत्रों में वैकल्पिक रचना के माध्यम से स्वदेशी, शरीर-श्रम निष्ठा एवं ट्रस्टीशिप के मूल्यों का सगुण दर्शन हो सकेगा, जो धीरे-धीरे ग्राम स्वराज्य का आधार बन सकेगा। देश भर में कम-से-कम 100 ऐसे सघन क्षेत्र विकसित करने की योजना बनानी होगी।

तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य कार्यकर्ता निर्माण का है। नये कार्यकर्ता इस विचार, इस आंदोलन से जुड़ें, इसके लिए गंभीर प्रयास करने होंगे तथा उनका प्रशिक्षण भी नियमित रूप से चलाना होगा। आंदोलन एवं वैकल्पिक रचना के कार्य के दौरान ऐसे युवक-युवतियां संपर्क में आयेंगी ही। उन्हें जोड़े रखने का कार्य एवं उनके प्रशिक्षण का कार्य तभी सार्थक बन पायेगा, जब भविष्य के आंदोलन व रचनात्मक कार्य की जिम्मेदारी भी वे लेते जायें।

बिमल कुमार

पुलिस के भरोसे शान्तता प्रकट नहीं होगी

□ न्यायमूर्ति चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

मैं बहुत संकोच के साथ कह रहा हूँ। संकोच इसलिए है कि मैं अभी तक तो पितामह तक ही रुका था। अब मेरी 5 साल की परपोती है। वह अपने पिता के साथ लंदन में रहती थी। अब वह मुम्बई आयी, मेरे घर सात दिन तक रही, मैं सात दिन में उसे चिड़िया नहीं दिखा सका। मुम्बई में चिड़िया दिखती नहीं हैं। कहते हैं कि मोबाइल की वजह से चिड़िया खतम हो गयीं। झाड़ पर चिड़िया घोंसला नहीं बांधती। क्योंकि कौए उसके अंडे खा जाते हैं। उसको डर रहता है, तो वह घर के कोने में बांधती है। मुम्बई में मैं जिस इलाके में रहता हूँ, वहां तो कंक्रीट का जंगल है। चिड़िया दिखती नहीं और चिड़ियों की कहानी भी खतम हो गई। चिड़ियों के नाम पर जो खाना खिलाते थे, वह भी खतम हो गया।

मुझे अपनी फिक्र नहीं है। मैं अपनी परपोती को कैसा समाज देना चाहता हूँ, यह मेरे सामने यक्षप्रश्न है। इस प्रश्न पर हम सभी चिंतन करें, यह मेरी अपेक्षा है।

महाभारत ने तो यह तय कर लिया था कि कौरव सौ रहेंगे, लेकिन पांडव पांच ही रहेंगे; तो संख्या किसकी ज्यादा रहेगी, यह महाभारत ने हमें बता ही दिया है। उस समय जो द्रौपदी का चीरहरण हुआ, उस वस्त्रहरण से इस वस्त्रहरण तक आप क्यों नहीं सोचना चाहते हैं?

समता की बात कहने वाले समाजवाद की बात कहते हैं। शुरू में जब संविधान बना था, तब इसमें सेक्युलर और समाजवाद दो शब्द नहीं थे। तब सेक्युलर समाज का शब्द नहीं था। शब्द आये, व्याख्या नहीं आयी; उसकी व्याख्या करने की कोशिश की

गयी। सब सहधर्मी समाज का आदर, यह सेक्युलर की व्याख्या होगी। दूसरी व्याख्या समाजवाद की आ गयी थी, और इसकी व्याख्या होगी : फ्रीडम फ्रॉम सेल्फ एक्सप्लॉयटेशन इकोनॉमिकल पॉलिटिकल एंड सोशल, सारे शोषण से समाज की मुक्ति, तभी समाजवाद होगा। लोकसभा में दोनों व्याख्याएं पास हो गयीं। समाजवाद की कोई व्याख्या संविधान में नहीं है। शून्य पर कितने भी शून्य लगायें तो शून्य ही होगा। गांधी ने इतना ही कहा था कि पहला आँकड़ा समाजवाद का इसमें जोड़ दो। उन्होंने कहा था कि शून्य तो इस देश की सबसे बड़ी देन है। मैं भी मानता हूँ कि एक पर शून्य लग जाये तो दस गुना हो जाता है। समाजवादी भावना का आँकड़ा इस शून्य पर लगे, इसकी कोशिश की नहीं; अंतिम आदमी तक जाने की बात कही थी, हम नहीं जा सके। अंत में मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि जिस मुकाम पर आज हम इस देश में हैं, इस परिस्थिति में हमको संविधान उद्देशिका में से समाजवाद का शब्द निकाल देना चाहिए, क्योंकि हमारा इस पर विश्वास नहीं, क्योंकि हम समाजवादी, समान समाज की रचना नहीं चाहते। हम समतादृष्टियुक्त समाज भी नहीं चाहते। जिस तरफ हम कदम नहीं रखना चाहते, उसे क्यों उद्देशिका में रखना चाहते हैं?

और एक चीज़ आपसे कहना चाहता हूँ कि हम औरत को रसोई घर की महारानी कहते हैं। लेकिन सारे बर्तनों पर, यहां तक कि चम्मच पर भी उसका नाम नहीं है। सारे बर्तनों पर के कृपापूर्वक नाम बदल डालिए। चम्मच भर की जिसकी प्रतिष्ठा नहीं, वह महारानी बनेगी! रसोई में सब्जी भी पुरुष से

पूछे बगैर नहीं बनती, तो क्या प्रतिष्ठा दी आपने? समता का मतलब मूल्यता होता है। जिस दिन स्त्री पुरुष से आगे जाएगी, उस दिन यह देश गांधी का देश कहलाएगा। एक भी शहर महिलाओं के लिए सुरक्षित क्यों नहीं है? पुराने राज्य से लेकर आज तक किसी ने भी महिलाओं के प्रति समता की वृत्ति नहीं रखी है। एक बहुत बड़े बापू हैं। उन्होंने कुछ नारियों के बारे में लिखा है। उन्होंने लिखा है—“पिछले जन्म में इसने पाप किये, इसलिए इस जन्म में यह महिला बनी और महिला बनकर यह विधवा हुई”, यह वाक्य था, और “जिस स्त्री की तरफ कई पुरुषों की नज़र पड़ती है, वह कुलटा होती है” ऐसी बातें थीं। मैंने इसके खिलाफ लिखा, तो मुझे गालियां मिलीं, धमकी भी मिली, पर मुझे बुरा नहीं लगा। उस वक्ता ने कहा कि धर्माधिकारी ने ऐसा लिखा, इसलिए उनकी पत्नी अस्पताल में हैं, और कहा कि दूसरे दिन यह जिस अखबार में छपा, उस अखबार का मैनेजिंग डायरेक्टर अस्पताल के आइ.सी.यू. में भर्ती है। यह कौन-सी रामायण है? झगड़ा तो मुझसे था न, इसमें मेरी पत्नी बीच में कहां आ गयी! यह क्या तमाशा हो रहा है?

बलात्कार नाम का शब्द पुरुष ने खोजकर निकाला। क्या महिलाएं बलात्कार के कारण डर-डर कर जीएंगी। ये कपड़े नहीं पहनने चाहिए, इस समय नहीं जाना चाहिए, उस समय नहीं जाना चाहिए। एक बार मृदुला बहन साराभाई से सवाल पूछा गया था कि तुम कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक अकेली घूमती हो, तुमको बलात्कार का डर नहीं लगता? उन्होंने जवाब दिया था कि बलात्कार नाम

का कोई अपघात मेरे शरीर पर होगा, इस डर से क्या मैं अपनी आजादी खो दूँ। बलात्कार को अपघात (एक्सीडेंट) कहा था। उन्होंने यह भी कहा था कि कानूनन जिस महिला पर बलात्कार होता है वह पीड़िता होती है, और जो पुरुष करता है वह गुनाहगार होता है।

मैं नागपुर में एक कार्यक्रम में गया था, तो महिलाएं बोल रही थीं कि एक औरत पर बलात्कार हुआ है, वह वैसी ही थी। वैसी ही थी यानी कैसी थी? कानून तो कहता है कि वेश्या पर भी बलात्कार हो सकता है; खुद पत्नी पर भी बलात्कार हो सकता है, तो मतलब क्या है 'वैसी ही थी' का? अगर आप मानेंगे कि बलात्कार से स्त्री भ्रष्ट होती है, उसकी आबरू चली जाती है, तो इस देश में कभी बलात्कार बंद नहीं होगा। शरीर ही अगर सब है, तो क्यों गांधी को नेता बनाया? किसी पहलवान को क्यों नहीं बना दिया होता? वह शारीरिक चीज़ नहीं है, इसका संबंध मन से होता है। मन अगर पवित्र होगा, तो शरीर जबरदस्ती से भ्रष्ट होगा—यह मानने वालों का जो समाज है, वह कौरवों का समाज होता है।

इसलिए मैं जानना चाहता हूँ कि क्या जबरदस्ती से इनसान भ्रष्ट होता है? महात्मा गांधी के मुँह में अगर कोई जबरदस्ती से गाय का मांस डाल देता, तो क्या गांधी भ्रष्ट होता? कहा जाता है मातृत्व जीवन का आधार है, स्त्री माता नहीं बनेगी तो अतृप्त जीवन है, और लड़के की माता नहीं बनेगी तो अधूरा जीवन है। सेवाग्राम में यह वाक्य किसी महिला ने कहा कि मैं माँ नहीं बनी, तो मेरी सारी उमर बेकार गयी; दूसरा सवाल पूछा था कि विनोबा भावे बाप नहीं बना तो उसकी जिंदगी बेकार नहीं गई! बाप बने बिना पुरुष की जिंदगी बेकार नहीं गई? बाप बने बिना पुरुष की जिंदगी बेकार नहीं जाती, पर स्त्री के

लिए मातृत्व के बिना उसका जीवन अकारथ मान लिया जाता है। इसलिए एक संस्था का महिलाओं ने नाम रखा था 'डाउन टू विद मदर'! माँ बनने से प्रतिष्ठा नहीं मिलती, क्योंकि माँ बनने के लिए भी पुरुष की शरण जाना पड़ता है, लेकिन आपने कभी स्त्री के ब्रह्मचर्य को कीमत दी! माँ की जितनी प्रतिष्ठा है, उससे ज्यादा ब्रह्मचर्य की नहीं होनी चाहिए? स्वयंभू ब्रह्मचर्य की होनी चाहिए।

आजकल की लड़कियाँ अकेली रहती हैं। लड़का एडॉप्ट करती हैं। उनके मातृत्व की कोई कीमत नहीं है। कुछ कुमारी माता बनती हैं। ऐसा यवतमाल जिले की घटना है, उनके मातृत्व में स्त्री की प्रतिष्ठा नहीं होती। मातृत्व से माता को इज्जत नहीं मिलती। ऐसा नहीं मानते हम कि स्त्री की स्वयंभू प्रतिष्ठा क्या होगी; यह दूसरा सवाल आपसे मैं पूछ रहा हूँ, जवाब आप ही ढूँढ लीजिये; मैं नहीं ढूँढूँगा। तीसरा प्रश्न आपसे पूछूँगा कि जब बांग्लादेश से हमारी लड़ाई हुई, जिस समय सैनिकों ने महिलाओं पर अत्याचार किया और जो माताएं बनीं, उनकी बहुत बड़ी संख्या थी। उन सारी महिलाओं को कलंकित मातृत्व कहकर समंदर में डुबा देंगे? मातृत्व को तो कलंकित कह देते हैं, जो पुत्र या पुत्री होती है, वह कलंकित कैसे होती है? स्त्री-पुरुष की विकाररहित दोस्ती नहीं हो सकती? जब तक स्त्री-पुरुष की विकाररहित दोस्ती नहीं होगी, तब तक लोकतंत्र नहीं चलेगा।

एक बार किसी ने कहा था, जब आरक्षण की बात थी, कितना आरक्षण होना चाहिए? एक बहुत बड़े नेता ने कहा था कि 50 प्रतिशत महिलाएं अगर संसद में आएंगी, तो पुरुष संसद सदस्य उन्हीं की तरफ देखते रहेंगे, काम तो कुछ करेंगे ही नहीं। यह लोकतंत्र है—यह समता की कैसी दृष्टि है? हम लोकतंत्र चाहते हैं, लेकिन इस तरह का

नहीं। आज के जवान लड़के अपना उपनाम नहीं बताते, क्योंकि उससे उनकी जाति की पहचान होती है, और जातिवाद से वह दोस्ती नहीं करते हैं। महात्मा गांधी ने कस्तूरबा को 'बा' कहा और कस्तूरबा ने 'बापू' कहा, तो महाराष्ट्र में बहुत टिप्पणियाँ हुईं। "यह कैसा आदमी है जो पत्नी को 'बा' कहता है?" बंगाल में तो पांच साल की लड़की को भी माँ कहते हैं। मैं जब ब्राह्मण के घर जाता था तो मेरी थाली अलग से लगती थी। पानी भी अलग मिलता था, क्योंकि उनकी दृष्टि से मैं शूद्र था।

मैं बताना चाहूँगा कि मेरी शादी का खर्च 22 रुपये हुआ था, जिसमें से 20 रुपये सरकारी खर्च व 2 रुपये अन्य खर्च। दहेज और शादी का खर्च जब तक कम नहीं होगा, तब तक इस देश में लड़की होने का स्वागत नहीं होगा। एक हाईकोर्ट जज अपनी लड़की की शादी का निमंत्रण ले कर आए। मैंने कहा, मैं तो शादी में कुछ नहीं देता, तो वह लिफाफे में 1000 रुपये डालकर बोले, इस पर अपना नाम लिख दीजिए; 1000 रुपये के 1000 लिफाफे होंगे, तो मेरा काला पैसा सफेद हो जायेगा! शहरों में काला पैसा सफेद करने का शादी सबसे बड़ा मार्ग है। यह कौन-सा व्यवहार है? आज हम पैसों से दामाद खरीदना चाहते हैं, और लड़की को बेचना चाहते हैं? लड़की की शादी कर देते हैं, दरवाजा बंद कर देते हैं, और पति का दरवाजा उसके लिए बंद हो जाता है बाहर निकलने के लिए। तो फिर दूसरा कोई दरवाजा ही नहीं है। मुझे समझ में नहीं आता, कैसा समाज है हमारा? एक महिला का पति उसे मारता था, पुलिस ने उसे पकड़ा; और सुबह वही पत्नी जो मार खा रही थी, वह चाय ले आयी। उसने पूछा, यह क्या है? पति का दरवाजा बन्द, मायके का दरवाजा बन्द है, →

□ नारायण देसाई

हाल ही में पांच राज्यों में हुए चुनाव परिणामों के बाद आगामी अप्रैल-मई में होने वाले लोकसभा चुनावों को लेकर कई तरह की अटकलें लगाई जा रही हैं। भविष्य को लेकर भी कई प्रकार की बातें की जा रही हैं। सत्ता की राजनीति से सदा दूर रहकर समाज का काम करने वाले एक लोकसेवक के नाते मेरे सामने आज कई चिन्ताजनक विषय हैं, जिन्हें मैं आप सभी के साथ साझा करना चाहता हूँ।

इन दोनों चुनावों के बारे में विश्लेषक अलग-अलग अटकल लगा रहे हैं और कुछ तो भविष्यवाणी भी कर रहे हैं। इसी बीच दलों एवं राजनीतिज्ञों द्वारा अपनी ओर आकर्षित करने के लिए तमाम तरीके अपनाए जा रहे

हैं। इसमें सबसे ज्यादा अशोभनीय तरीका है जनता के प्रतिनिधि बनने के दावेदार उम्मीदवारों द्वारा अपने प्रतिस्पर्द्धी दल के नेताओं के खिलाफ भद्दी-भद्दी बातें करना। बरसों पहले जब आज की तुलना में चुनाव इतने स्पर्द्धात्मक नहीं थे, तब आचार्य विनोबा भावे ने चुनाव के सबसे विलक्षण चरित्र की व्याख्या करते हुए कहा था कि वह आत्मप्रशंसा और परनिन्दा करने वाले होते हैं। उस काल की तुलना में आज यह परिभाषा और भी ज्यादा सही बन गयी है। वर्तमान में आत्मप्रशंसा और परनिन्दा के सागर में झूठे-सच्चे वायदों के बीच देश के मूलभूत सवाल कहीं खो गये हैं और उनके बजाए तात्कालिक चमक-दमक की बातों से मतदाताओं की आंखें चौंधिया

रही हैं। यदि आम चुनाव में देश के मूलभूत प्रश्नों का विचार हो तो ये चुनाव लोकतंत्र को मजबूत करने तथा संविधान के मूल सिद्धांतों को लागू करने की दिशा में आगे बढ़ने में सहायक होते। यही नहीं, बार-बार होने वाले यह चुनाव हमारे देश की प्रगति के मील के पत्थर भी बन सकते हैं।

हमें दो मुख्य बातों का विचार करना चाहिए। सर्वप्रथम चुनाव में खड़े होने वाले उम्मीदवार के व्यक्तित्व और उसकी काबिलियत के बारे में तो सोचना ही चाहिए। इसी के साथ हमें इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि यदि उनमें से कुछ उम्मीदवारों की प्रकृति तानाशाह जैसी हो तो उसका प्रभाव देश के लोकतंत्र के लिए घातक साबित हो सकता

→जायेगी कहाँ? और, स्त्री हर पुरुष के लिए उपभोग्य वस्तु मान ली जाती है। विनोबा भावे ने इन्दौर में आन्दोलन किया था, उन्होंने एक सिनेमा पोस्टर देखकर कहा था “इट्स कम्पल्सरी रेग्युलर एज्यूकेशन ऑफ सेक्स— इस अशोभनीय पोस्टर को निकाल देना चाहिए, भूदान खड्डे में जाए, तो जाए”। ऐसा वाक्य था, इसे निकाल डालो, मैं नहीं देख सकता। एक महिला वहां खड़ी थी, उसने पूछा अशोभनीय का मतलब क्या है? उसको बहुत अच्छा जवाब दिया कि उमर में आयी लड़की के साथ देखने में जिसमें शर्म लगे, वह अशोभनीय है। सर्वोदय के एजेंडे पर महिलाओं के अशोभनीय पोस्टर के खिलाफ कोई आंदोलन नहीं है। आज एक ज्वलंत प्रश्न उठा। एक बलात्कार हुआ। जवान लड़के उठकर खड़े हुए। मैं आपसे पूछता हूँ कि उस आन्दोलन में कितने बड़े लोग खड़े थे? भ्रष्टाचार के आन्दोलन में तो बहुत लोग खड़े थे, लेकिन

उस आन्दोलन में क्या कोई पिता खड़ा था? क्यों नहीं था?

मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि पहले हम पड़ोसियों के यहां कभी दूध मांगने जाते थे। लेकिन सबसे यह रेफ्रिजरेटर आया है तब से पड़ोसियों से संबंध फ्रीज हो गये। रेफ्रिजरेटर ने पड़ोसी से रिश्ता खतम कर दिया। क्योंकि जब तक पड़ोस की लड़की हमारे घर आती नहीं, तो वह हमारी कोई नहीं होती। सुरक्षा की बात आज पूरे देश में चल रही है। पहले तो पड़ोस की लड़की की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देख सकते थे, आज क्या हो गया? आज आधा बाजार महिलाओं के इश्तिहार पर चलता है। पुरुषों से संबंधित चीजों के इश्तिहार में भी महिलाएं दिखाई जाती हैं! आज इस देश में अनाथ आश्रम बढ़ रहे हैं। कहने को तो हम कहते हैं कि यह धार्मिक देश है, तो क्यों बढ़ रहे हैं अनाथ आश्रम?

मुझे बहुत दुःख होता है, जब हम एक दूसरे के खिलाफ बोलते हैं। एक दूसरे के खिलाफ बोलना बंद कर दीजिये। मेरी परपोती की फिक्र कौन करेगा। मेरी परपोती को अपना मानकर सोचिए। आप तो अपने ही नातियों के बारे में नहीं सोचते, और कहते हो कि हमें मोह नहीं, माया नहीं। प्रेम कभी मोह होता है? लोभ और मोह में फर्क करना चाहिए। तो क्या समाज बनेगा, हमारा पड़ोस ही पड़ोस नहीं रहा? सारे दरवाजे बंद हो गये। संबंध, संबंध नहीं रहे; समाज, समाज नहीं रहा; तो पुलिस के भरोसे शान्तता प्रकट होगी, यह मानना गलत है। आत्मज्ञान और आत्मबल बढ़ेगा, तो स्त्री स्वरक्षित रह सकती है। गांधी ने भी यह माना, स्त्री-मुक्ति की बात नहीं कही, स्त्री-शक्ति की बात कही। स्वरक्षा की बात कही। महिला सुरक्षित नहीं, स्वरक्षित हों। इस मुकाम पर अभी हम नहीं पहुंचे हैं। □

(18-19 मार्च, 2013 को सर्व सेवा संघ के पटना अधिवेशन में मुख्य अतिथि का अभिभाषण)

है। लेकिन व्यक्ति के स्वभाव से ज्यादा जरूरी है उसकी नीतियों पर विचार करना। यह इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि चुनाव जीतने के बाद लोग सत्ता में आए दल से उन नीतियों को लागू किये जाने की आशा भी रखेंगे। विरोधी दल भी इन्हीं नीतियों को केन्द्र में रखकर सत्ताधारी दल का मूल्यांकन करेंगे। इसलिए नीतियों का सवाल उम्मीदवार के व्यक्तित्व जितना ही महत्वपूर्ण बन जाता है।

दूसरी विचारणीय बात है, इस साल होने वाले चुनाव किन मूलभूत सिद्धांतों को केन्द्र में रखकर होंगे? यह हमारी चिन्ता का विषय है। जाहिर-सी बात है राष्ट्रीय चुनाव राष्ट्रीय मुद्दों पर होने चाहिए। यानी देश के ज्यादातर लोगों के जीवन से संबंधित होने चाहिए। मूलभूत नीतियों की प्राथमिकता को देखते हुए राष्ट्रीय मुद्दे ऐसे होने चाहिए जो :

- * संविधान के मूलभूत सिद्धांतों को ध्यान में रखकर खड़े किये गये हों।
- * देश के ज्यादा से ज्यादा लोगों के जीवन को दीर्घकाल तक प्रभावित करने वाले हों।
- * उन प्रश्नों को स्पर्श करने वाले हों जो विशेष रूप से समाज के दलित, वंचित तथा पिछड़ों के जीवन से संबंध रखते हों।

हमारी चिन्ता का विषय यह है कि आजकल चुनाव में जिन मुद्दों पर विचार होता है, वे समाज के मुखर या श्रेष्ठी वर्ग को ध्यान में रखकर उठाए जाते हैं और जो वर्ग मुखर नहीं होते उनकी आवाज चुनाव के शोर-शराबे में दब जाती है। वर्तमान में देश की एक मूलभूत समस्या है रोजी-रोटी की। लेकिन राजनीतिक दल प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार की प्रशासनिक क्षमता या अक्षमता अथवा भ्रष्टाचार जैसे मुद्दे ही उठा रहे हैं। इस शोरगुल में कहीं भी करोड़ों भूमिहीन या करोड़ों कम पढ़े-लिखे शहरी व ग्रामीण

युवकों के प्रश्न नहीं उठाये जाते। इसी प्रकार जल, जंगल और जमीन से जुड़े सवाल भी देश के मूलभूत प्रश्न हैं। देश के सैकड़ों इलाकों में सामान्य जनता, खास तौर से वंचित समाज, इन सवालों को लेकर आंदोलन कर रहे हैं। लेकिन चुनाव की आँधी में इन आंदोलनों का स्वर दबाया जाता है।

भारतीय संविधान के मूलभूत सिद्धांतों द्वारा मान्य स्वतंत्रता, समानता, बंधुता और न्याय की दिशा में देश कितना आगे बढ़ पाया है यही अपने देश के लोकतंत्र की सही कसौटी हो सकती है। आज तात्कालिक सवालों पर इतना शोरगुल होता है कि उसकी चकाचौंध में जनता मूलभूत सिद्धांतों तथा सवालों को भूल जाती है और इसी कारण लोकतंत्र कमजोर होता जाता है। हर चुनाव में इस बात पर विचार होना चाहिए कि सच्चे लोकतंत्र में अंतिम सत्ता किसके हाथ में हो? मतदाताओं के या उनके द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में? विधायक, सांसद या प्रधानमंत्री के बारे में चर्चा करने का अपना महत्व हो सकता है, लेकिन यह एकमात्र महत्वपूर्ण मुद्दा नहीं है।

महत्त्व की बात तो यह है कि हर चुनाव के बाद आम लोग मजबूत हों और लोकतंत्र मजबूत हो, न कि केवल सत्ताधारी या विपक्षी दल। यह एक चिन्ता का विषय है कि हम चुनाव प्रचार की अंधी दौड़ में कहीं सत्ता के असली हकदार मतदाता को गौण बनाकर, उसे बहला-फुसलाकर, ललचाकर, खरीदकर, डरा-धमकाकर और या नशे में चूर कर उसका मत हासिल कर सिर्फ राजनीतिक दलों को ही मजबूत कर रहे हैं। कोई भी दल कभी भी राष्ट्र से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं हो सकता एवं उम्मीदवार कभी भी मतदाता से महत्वपूर्ण नहीं हो सकता। इसलिए राष्ट्र का महत्त्व समझकर सभी दलों को देश के मूलभूत प्रश्नों पर अपनी नीति घोषित करनी चाहिए।

चुनाव जीतकर सत्ता में आ जाने के बाद उस दल की सरकार इन मूलभूत सवालों को हल करने का काम कैसे कर रही है, इस बात की चौकीदारी मतदाताओं को करनी चाहिए।

तात्कालिक और दीर्घकालिक मूलभूत प्रश्नों के चयन में विवेक रखना होगा। भ्रष्टाचार नाबूद (नष्ट) होना चाहिए और इस बारे में एकमत होना चाहिए। भ्रष्टाचार में शामिल दोनों प्रकार के लोग, एक तो जो घूस लेते हैं और दूसरे जो देते हैं—दोनों को रोकने के कार्यक्रम बनाने चाहिए। महँगाई पर अंकुश लगाना चाहिए और इसके लिए संबंधित राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कारणों पर काबू पाना चाहिए। इसी प्रकार, देश के ग्रामीण और शहरी बेरोजगार युवकों को रोजगार देना यह एक मूलभूत सवाल है। देशी या विदेशी कंपनियों को खनिज के दोहन के लिए खुली छूट देकर उस जमीन पर बसने वाले लोगों को विस्थापित करने की नीति को रद्द किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त शिक्षा के निजीकरण और व्यापारीकरण के कारण गरीब वर्ग शिक्षा से वंचित हो गया है। इस प्रकार के अनेक मूलभूत सवाल, जो चुनाव के शोरगुल में दब गये हैं, उन्हें आज उठाना निहायत जरूरी हो गया है। □

‘सर्वोदय जगत’

के सभी सुहृद पाठकों, ग्राहकों,
लेखकों व शुभ-चिन्तकों से

अनुरोध है कि अपने

समसामयिक महत्वपूर्ण

आलेख

व क्षेत्रीय कार्यक्रमों की

रपट

पत्रिका के लिए जरूर भेजें।

आपके सहयोग की सादर

अपेक्षा है।

—सं.

जिस एक रचना ने देश को आंदोलित किया

□ बद्रीनारायण तिवारी

स्वाधीनता आंदोलन में एक रचना ने लाखों लोगों को आंदोलित किया; इसे जुलूसों में उत्साह से गाया जाता था। कानपुर के नर्वल ग्राम में सेनानी रचनाकार श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' का जन्म 16 सितंबर, 1893 को हुआ था। जननायक पं. जवाहरलाल नेहरू ने पार्षदजी के गांव जाकर कहा, "झण्डा ऊँचा रहे हमारा..." के नाम से यह गांव हमेशा याद किया जायेगा।

यह मेरा सौभाग्य था कि अपने जनरलगंज निवास से पार्षदजी महीने में कई बार गलियों से पैदल चलकर हमारे यहां आने की कृपा करते थे। तभी हम पार्षदजी से पुरानी घटनाओं को पूछा करते थे। उसी संदर्भ में कानपुर के स्वतंत्रता आंदोलन के केन्द्र-स्थल 'नवजीवन पुस्तकालय' में हिन्दी युग निर्माता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता में एक आयोजन हुआ था। पार्षदजी ने बताया, "उनके सम्मान में जो रचना पढ़ी थी, उसे गणेश शंकर विद्यार्थी ने काफी पसंद किया और मुझे बधाई दी। इसके बाद विद्यार्थीजी से घनिष्ठता बढ़ती गयी और उन्हीं की प्रेरणा से कांग्रेस में सम्मिलित होकर सक्रिय आंदोलन में भाग लेकर जेल जाने लगा।"

पार्षदजी कारागार की सलाखों में बंदी जीवन की अनेक घटनाएं सुनाते थे, "21 अगस्त, 1921 को असहयोग आंदोलन में जेल जाना पड़ा। लखनऊ जेल में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, पं. नेहरू, जे. बी. कृपलानी तथा विद्यार्थीजी के साथ वर्षों कारागार की सलाखों में रहना पड़ा। इसके अलावा आगरा की जेल में भी मुझे सेनानी लोक गीतकार पं. रामनरेश त्रिपाठी तथा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त आदि के सान्निध्य में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वहां इनके गीतों को सुनकर रचना लिखने की प्रेरणा भी मिलती थी।" इसी प्रकार पार्षदजी की

संस्मृतियों पर सुविख्यात कवि बालकवि बैरागी तथा लेखक शिवकुमार गोयल के आलेख एवं राष्ट्रकवि पं. सोहनलाल द्विवेदी द्वारा संपादित कृति 'झण्डा ऊंचा रहे हमारा...' अति चर्चित हुई।

"मेरे जीवन का सबसे सुखद दिन वह था जिस दिन सन् 1925 में सर्वप्रथम देश के शीर्षस्थ नेताओं ने एक स्वर से मंच पर 'झण्डा ऊंचा रहे हमारा...' गाया था, जिसमें सरोजिनी नायडू, नेहरूजी आदि सम्मिलित थे। इसी यादगार को स्थायी बनाने हेतु 'मानस संगम' द्वारा 1857 के ऐतिहासिक कानपुर के नानाराव पार्क में शिलालेख पर यह राष्ट्रीय गीत सर्वप्रथम अंकित कराया। इसके अनावरण के समय देश के 22 क्रांतिकारियों ने नानाराव पार्क के 'शहीद उपवन' में भाग लिया था। इसकी अध्यक्षता शहीद-ए-आजम भगत सिंह के क्रांतिकारी साथी शिव वर्मा ने की थी। इस प्रेरणास्पद 'झण्डा गीत' को पुनः गाने की चर्चा करते हुए पार्षदजी ने बताया कि वह घटना भी मुझे भलीभांति याद है, जब गुजरात के हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में गांधीजी, सुभाषचन्द्र बोस, नेहरूजी, जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी' जी ने अपार जनसमूह में समवेत स्वरों में यह गीत एक साथ गाया था। यह मेरे जीवन का एक स्वर्णिम दिवस था। उसी क्षण "शहीदों की चिताओं पर लगे हरे बरस मेले..." के रचयिता 'हितैषीजी' ने मुझसे पूछा था कि इस समय आपको कैसा लग रहा है जब इतने बड़े लोग गा रहे हैं। मैंने उत्तर दिया कि "आज इतने बड़े-बड़े लोग इस गीत को गा रहे हैं तो ऐसा लग रहा है कि अब कोई गाने न गाये, मुझे कोई अफसोस नहीं होगा।" इन घटनाओं को सुनाते समय पार्षदजी पुरानी स्मृतियों में डूब जाते थे। पार्षदजी ने कुछ समय अध्यापन कार्य भी किया। तत्पश्चात् 'सचिव' नामक एक पत्रिका भी निकाली जिसके

मुख पृष्ठ पर उनकी ये पंक्तियां प्रकाशित होती थीं—

राम राज्य की शक्ति शांति,
सुखमय स्वतंत्रता लाने को।
लिया 'सचिव' ने जन्म,
देश की परतंत्रता मिटाने को॥

पार्षदजी की स्मरण-शक्ति उतनी अवस्था में भी तीव्र थी, वैसी ही आवाज में जिस तेवर से झण्डा गीत सुनाते थे—उनकी उस वृद्धावस्था का भान तक नहीं होता था। पार्षदजी को बचपन से ही रामचरित मानस पढ़ने में रुचि थी तथा वह गांव की रामलीला में अभिनय के शौक का वर्णन करते थे। 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' झण्डा गीत का प्रेरणास्रोत 'मानस' को बताने पर मैंने उनसे तत्संबंधी लेख 'मानस संगम' पत्रिका में प्रकाशन हेतु मांगा, उसके प्रकाशन पर यह लेख काफी चर्चित भी हुआ था। राम कथा के सुविख्यात व्याख्याता युग तुलसी पद्मभूषण पं. रामकिंकरजी महाराज की कथा वे मेरे यहां अनवरत रूप से 33 वर्षों तक नियमित सुनने आते रहे। अंतिम दिवस 'मानस संगम' समारोह में देश-विदेश के विद्वानों के साथ पार्षदजी बड़ी कठिनाई से मंच पर बैठाये जाते थे।

महात्मा गांधी के सर्वप्रथम अभिनंदन ग्रंथ को संपादित करने वाले राष्ट्रकवि पद्मश्री सोहनलाल द्विवेदी (जिसकी भूमिका सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन ने लिखी थी) की राष्ट्रीय रचनाएं, स्वाधीनता आंदोलन की पंक्तियां भी अति चर्चित थीं। वे भी कानपुर आने पर मेरे यहां प्रवास करने की कृपा करते थे। एक बार द्विवेदीजी की उपस्थिति में पार्षदजी के आने पर दोनों राष्ट्रकवियों में चर्चा होने के मध्य दिल्ली की 26 जनवरी के गणतंत्र दिवस पर राजपथ की निकलने वाली शोभायात्रा की चर्चा प्रारम्भ हो गयी। वह घटना थी, दिल्ली में श्री लल्लनप्रसाद व्यास के यहां

दूरदर्शन पर गणतंत्र दिवस के जुलूस में मध्य 'झण्डा ऊंचा रहे हमारा' की प्रेरणादायी भव्य झांकी के प्रदर्शन की होने लगी। तभी दिल्ली के 'हिन्दुस्तान' में सुविख्यात कवि बालकवि बैरागी का तद्विषयक भाव स्पर्शी लेख सारे देश में चर्चा का विषय हुआ। उसका शीर्षक था—'जो लगातार घाटे में रहे' प्रकाशित लेख में लिखा, "शायद यही एक 'बनिया' है जो लगातार घाटे में जीता रहा और अभी जीये जा रहा है। लेकिन हम भी कितने ना देहन हैं। पता नहीं; पार्षदजी के घाटे का हिसाब कब चुका पायेंगे।" इसके बाद ही देश के लोगों को उनके जीवित होने की जानकारी हुई। तत्कालीन राष्ट्रपति वी. वी. गिरि ने उन्हें 'पद्मश्री' के सम्मान से विभूषित किया था। पार्षदजी की रचनाओं पर विश्वविद्यालयों में शोधकार्य भी हुए।

अंततः पार्षदजी का 'झण्डा ऊंचा रहे हमारा' उनकी राष्ट्रीय कीर्ति के यशोगान का मील का पत्थर बना। जीवन के अन्तिम समय देश की विषम परिस्थितियों को देखकर पार्षदजी की 'आत्म-चिन्तन' शीर्षक में जो रचनाएं प्रकाशित हुईं, उस व्यथा कथा की कुछ रेखांकित पंक्तियां प्रस्तुत कर रहा हूं :

आज चिन्तित हो रहा हूं!
देख गतिविधि देश की, मैं मौन में रो रहा हूं।
हो विमुख कर्तव्य से, अधिकार केवल चाहते हैं।
राष्ट्र की चिन्ता नहीं, व्यापार केवल चाहते हैं,
निष्प्रयोजन नाम की, झंकार केवल चाहते हैं,
देख उनके पैतरे, जगता हुआ भी सो रहा हूं।
आज चिन्तित हो रहा हूं।

फिर उठो ऐ देश भक्तों, फिर तुम्हीं कुछ कर सकोगे,
अर्थ-संकट की अभी लंका जलानी है तुम्हें,
कुछ यही आशा सँजोये, भार जीवन दो रहा हूं।
आज चिन्तित हो रहा हूं।

आज ऐसे राष्ट्रभक्तों को हम विस्मृत कर रहे हैं, जिनकी लेखनी से देश के करोड़ों कंठ स्वाधीनता आंदोलन में गूँज रहे थे। □

भारत का पितामह बनने से इनकार

□ सचिन कुमार जैन

विश्व व्यापार संगठन की बाली बैठक में 6 दिसंबर 2013 को जिस समझौते के लिए भारत सरकार राजी हो गयी, उससे साफ संकेत मिलता है कि हम प्रभावशाली कूटनीतिक पूंजी की ताकत के सामने झुक गये हैं। अब भारत न तो आसानी से न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ा सकेगा, न ही अपने खाद्य कार्यक्रमों का ज्यादा विस्तार कर सकेगा। समझौते के मुताबिक अब हमें सभी जानकारियां विकसित देशों को देनी होंगी। वहीं हमारी सरकार अब भी यह तय नहीं कर पा रही है कि विकसित देशों के लाभ के लिए हम अपनी ताकत यानी खेती को दांव पर क्यों लगा रहे हैं? खेती और खाद्य रियायत पर समझौता करने का मतलब था 65 करोड़ किसानों और खाद्य-सुरक्षा कानून के अंतर्गत 87 करोड़ लोगों के हक को सीमित करने की शुरुआत। इस कानून के लागू होते ही खेती को दी जाने वाली सब्सिडी का कृषि उत्पादन के 10 फीसदी हिस्से से ऊपर निकल जाना निश्चित है।

बाली की बैठक शुरू होने के पहले ही जब भारत सरकार को डब्ल्यू.टी.ओ. से संबंधित इन प्रस्तावित समझौता प्रावधानों का प्रारूप मिला, तभी से यह बहस शुरू हो गयी थी कि हमारी सरकार क्या शांति प्रावधान (पीस क्लोज) के लिए सहमत होगी? भारत सरकार ने इस मसले पर कोई समझौता नहीं करने का निश्चय किया था। उल्लेखनीय है कि भारत सरकार देश के भीतर अपने नागरिकों के लिए संवैधानिक ढांचे के अंतर्गत हक आधारित खाद्य-सुरक्षा कार्यक्रम चलाती है, तो उसे डब्ल्यू.टी.ओ. द्वारा वैश्विक व्यापार के लिए घातक नीति के रूप में प्रचारित किया जाता है। बदहाल करने वाली वैश्विक नीतियों

के कारण पिछले 15 वर्षों में 2.90 लाख किसानों की आत्महत्या के बावजूद हमें उनकी रक्षा के लिए कोई भी कदम उठाने से रोका जाता है।

जब बाली में इस बैठक का पहला सत्र शुरू हुआ तो भारत में वाणिज्य मंत्री आनन्द कुमार शर्मा ने बहुत ठोस पक्ष रखा कि हम इस बिन्दु पर इसलिए सहमत नहीं हो सकते, क्योंकि इससे हमारी लोगों के प्रति प्रतिबद्धता पर गहरा सवाल खड़ा होता है और लोकतांत्रिक मूल्यों का पालन करते हुए हम देश के लोगों के भोजन के अधिकार पर कोई समझौता नहीं करेंगे। पहले दिन ही भारत के इस पक्ष से अमेरिका, यूरोपीय यूनियन और डब्ल्यू.टी.ओ. के माथे पर बल पड़ गये थे। क्योंकि ये तीनों मानते हैं कि किसानों से न्यूनतम समर्थन मूल्य पर सरकारी खरीद होने से भोजन का व्यापार करने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बेतहाशा आर्थिक लाभ कमाने के मौके कम होंगे।

वे भारत को नजरअंदाज भी नहीं कर सकते थे, क्योंकि यह दुनिया के सबसे बड़े बाजारों और उत्पादकों, दोनों ही श्रेणियों में अग्रणी देश है। पिछले दिन के बाद यह सुना जाता रहा कि डब्ल्यू.टी.ओ. के महानिदेशक सहित विकसित देशों के नेता भारत पर दबाव बनाते रहे कि यह समझौता हो जाए। इसका एक बड़ा कारण यह भी था कि इसके पहले की डब्ल्यू.टी.ओ. मंत्रीस्तरीय बैठकें बिना समझौते के खतम होती रही हैं। यदि बाली बैठक भी असफल हो जाती तो वैश्विक कारोबार में वर्चस्व रखने के लिए बना यह मंच भी खतम होने के कगार पर पहुंच जाता।

अमेरिका लगातार भारत पर दबाव बनाता रहा है कि वह खेती और खाद्य-सुरक्षा के

लिए किये जाने वाले खर्च को कम करे। इसके पीछे उसका तर्क है कि जब सरकार किसानों को सब्सिडी, लोगों को सस्ता राशन देती है तो इससे व्यापार पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और कंपनियों के लाभ कमाने के अवसर कम होते हैं। बहरहाल सच्चाई तो यह है कि अमेरिका की जनसंख्या भारत की एक चौथाई है और खाद्य सब्सिडी पर भारत अमेरिका से तीन चौथाई कम खर्चा करता है। अमेरिका 45 खरब रुपये खर्च करके अपने यहां अतिरिक्त पोषण सहायता कार्यक्रम (सप्लीमेंटल न्यूट्रिशन असिस्टेंस प्रोग्राम) चलाकर 4.70 करोड़ लोगों पर 96,480 रुपये प्रति व्यक्ति खर्च करता है और हर साल 240 किलो अनाज की मदद देता है। दूसरी तरफ भारत, जहां 77 फीसदी लोग 30 रुपये प्रतिदिन से कम खर्च करते हैं, वहां भारत सरकार यदि सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) के तहत भूख के साथ जीने वाले 47.5 करोड़ लोगों को 1620 रुपये सालाना खर्च करके 58 किलो सस्ता अनाज देती है, तो अमेरिका और उनके मित्र देशों के पेट में दर्द होने लगता है।

सच तो यह है कि भारत दो स्तरों पर मात खाता है। पहला, व्यापार को नुकसान पहुंचाने वाली सब्सिडी के बारे में जब मापदंड तय हुए तब यह कहा गया था कि सरकारें 1994 में दिये जाने वाले आर्थिक सहयोग (एग््रीगेट मेजर ऑफ सपोर्ट) को आधार मानें। जब अमेरिका खूब सब्सिडी दे रहा था तब भारत न के बराबर सब्सिडी दे रहा था। भारत में यह खर्चा बाद में बढ़ना शुरू हुआ। पर डब्ल्यू.टी.ओ. में हम फँस गये। इसके अलावा समस्या यह भी है कि सब्सिडी पर होने वाले व्यय का मूल्यांकन 1986-88 की कीमतों के आधार पर किया जाता है, जबकि उत्पादन की वास्तविक लागत उस आधार मूल्य से कहीं ज्यादा बड़ी है।

अमेरिका में खेती पर सब्सिडी 1995 में 36.60 खरब रुपये थी, जो 2010 में बढ़कर 78.80 खरब रुपये हो गयी। वहीं भारत में यह मात्र 83000 करोड़ थी। सभी विकसित देश मिलकर 244 खरब रुपये की सब्सिडी दे रहे हैं। लेकिन वे चाहते हैं कि विकासशील देश अपने किसानों और नागरिकों को कोई रियायती मदद न दें, ताकि उनके (विकसित देशों को) उत्पादन को विकासशील देशों में व्यापार करने का माकूल वातावरण मिलता रहे और बाजार पर उनका कब्जा और मजबूत हो। 1994 में जब डब्ल्यू.टी.ओ. का गठन हो रहा था तब यूरोपीय देशों और अमेरिका ने खुद को सब्सिडी के कानूनी जाल से बचाने के लिए पीस क्लोज का प्रस्ताव दिया था। इससे उन्हें 9 साल की छूट मिली। अब वे भारत और जी-33 देशों के लिए इसे लागू करवाना चाहते थे, जिनकी कुल अर्थव्यवस्था विकसित देशों से बहुत छोटी है। इन नये देशों को वे 4 साल की छूट देने की बात कर रहे थे। डब्ल्यू.टी.ओ. क्या समझ नहीं पा रहा है कि अमेरिका और यूरोप आर्थिक उपनिवेश स्थापित करने के लिए सब्सिडी देते हैं, जबकि भारत जैसे देशों के लिए सब्सिडी देना अनिवार्यता है।

बाली बैठक का समय बढ़ा दिया गया, ताकि साफ-साफ न सही, शब्दों के हेर-फेर से तो कोई जाल बुना जा सके। यही हुआ भी; जिस समझौते को हमने स्वीकार किया है, उसके तहत अमेरिका यह कह सकता है कि भारत की अनाज खरीदी और भण्डारण की व्यवस्था दुनिया में न केवल दूसरे देशों के लिए चुनौती बन रही है, बल्कि खुले और अनियंत्रित व्यापार के माहौल को भी प्रदूषित कर रही है। इसका अर्थ यह है कि डब्ल्यू.टी.ओ. के इस तरह के कदम भारत सरकार को संविधान से और दूर ले जाने में सफल हो रहे हैं। भारत लगातार कह

रहा था कि हम खाद्य सब्सिडी जारी रखेंगे। वहीं डब्ल्यू.टी.ओ. ने आखिर में कहा कि आप मौजूदा स्तर की सब्सिडी ही जारी रख सकते हैं। और भारत मान गया। यानी अब खाद्य सब्सिडी में बढ़ोतरी करना कठिन हो गया है। (सप्रेस)

अहिंसक-संवाद आयोजन

उत्तर बिहार के भारत नेपाल सीमावर्ती इलाके में कई वर्षों से हिंसात्मक गतिविधियां तेज होती जा रही हैं। कई नदियों पर बने तटबंध से त्रस्त यह क्षेत्र हिंसात्मक वृत्ति का केन्द्र स्थल विकसित होता जा रहा है। इन वृत्तियों में मानव व्यापार, बाल व्यापार, बाल अपराध, हत्या के लिए पशु तस्करी, गोवंश व्यापार तेजी से फैल रहा है। इस हिंसात्मक व्यवहार को कई छोटे-बड़े सफेदपोश का संरक्षण प्राप्त है। इसलिए इस पर जुबान भी खोलना एक बड़ी चुनौती है। इस चुनौती को स्वीकार करते हुए सुपौल जिला की कई समानधर्मी वैचारिक संगठनों, संस्थाओं और समूहों ने इसके विरुद्ध प्रतिवाद करना आरम्भ किया है।

इसी कड़ी में महात्मा गांधी पुण्यतिथि के अवसर पर अहिंसक संवाद कार्यक्रम का आयोजन कर भारतीय जीवन-पद्धति के मूल स्तम्भ सदाचार और शाकाहार के नियमित प्रचार-प्रसार करने का संकल्प लिया गया। कार्यक्रम का आरम्भ सुपौल के प्रसिद्ध शिक्षाविद् कालीचरण मिश्र की अध्यक्षता में सर्वधर्म समभाव प्रार्थना से हुआ। इसके उपरांत सर्वोदय पखवारा में 12 फरवरी तक ग्राम स्तर पर सभाएं आयोजित हुईं। सफाई, सत्साहित्य का प्रचार किया गया। नशा, मानवीय हिंसा, पशु हिंसा न हो, इसका संकल्प लिया गया।

—चन्द्रशेखर पूनम

पर्यावरण और चुनावी राजनीति

□ सुनीता नारायण

इस आम चुनाव में दो सवाल ऐसे हैं, जिनके बारे में कोई जिक्र नहीं हो रहा है। पहला सवाल, ग्रीन पार्टी की बात हम कब करेंगे और दूसरा सवाल क्या पर्यावरण कभी चुनावी मुद्दा बन पायेगा? दोनों ही सवालों के जवाब एक सिरे से गुंथे हुए हैं। भारतीय लोकतंत्र और भारतीय पर्यावरण दोनों ही ऐसे विषय हैं जिनके बारे में एक साथ सोचने का वक्त आ गया है क्योंकि दोनों के सामने एक ही प्रकार की चुनौती है।

हमारा संसदीय लोकतंत्र वेस्टमिनिस्टर प्रणाली की फोटोकॉपी है जो किसी भी प्रकार से वास्तविक मुद्दों को राष्ट्रीय बनने से रोकती है। मसलन, जर्मनी में न केवल ग्रीन पार्टी की स्थापना होती है बल्कि वह गठबंधन के जरिए सत्ता में भी पहुंच जाती है। वहीं बगल के ब्रिटेन में ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता हालांकि ब्रिटेन में पिछले चुनावों में ग्रीन पार्टी को ठीक-ठाक वोट मिले थे लेकिन आज भी ब्रिटेन में उसे कोई महत्व नहीं मिलता है। कहने का आशय यह है कि ग्रीन पार्टी की जरूरत तो ब्रिटेन में महसूस की जाती है लेकिन वहां की चुनाव-प्रणाली ऐसी है जो उसे सत्ता तक पहुंचने से रोकती है। जाहिर सी बात है मुद्दे संसद तक सफर कर सकें, यह ब्रिटेन की संसदीय-प्रणाली में अनिवार्य नहीं है।

लेकिन आप यहां यह भी ध्यान रखिए कि यूरोप में अलग से ग्रीन पार्टी बनना ही पर्यावरण की दिशा में उठा एकमात्र राजनीतिक कदम नहीं है। वहां हर पार्टी के एजेण्डे में पर्यावरण अहम मुद्दा है। क्लाइमेट चेंज, एमिशन नार्म्स से जुड़े वादे, लो-कार्बन टेक्नालॉजी, पर्यावरण की रक्षा आदि विषयों पर पार्टियों को अपना रुख साफ करना होता है। उन्हें जनता को बताना होता है कि वे कैसी पर्यावरण नीति का पालन करेंगे। केवल वादा ही नहीं बल्कि सत्ता में आने के बाद

वे उन वादों को निभाने की भी कोशिश करते हैं। भले ही इसके लिए उन्हें कितने भी लोहे के चने चबाने पड़े।

आस्ट्रेलिया में भी पर्यावरण के नाम पर चुनाव लड़े और जीते गये हैं। आस्ट्रेलियन लेबर पार्टी सत्ता में आयी यह कहते हुए कि तत्कालीन सत्ताधारी दल पर्यावरण के मुद्दों को सूली पर टांग रही है। लेकिन सत्ता में आने के बाद लेबर पार्टी पहले की जान हार्वर्ड सरकार से भी बुरे तरीके से पर्यावरणीय मुद्दों के साथ डील कर रही है। साफ है घोषणाएं करने से पर्यावरण को नहीं बचाया जा सकता।

फिर सवाल उठा है कि ऐसे कौन से कारण हैं जिनके कारण पर्यावरण संकट में है? अपने यहां भारत में देखें तो सभी राजनीतिक दलों ने इस बार पर्यावरण की बात तो की है। भाजपा, कांग्रेस, सीपीआईएम सभी कह रहे हैं कि वे पर्यावरण संरक्षण की दिशा में कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाएंगे। भाजपा कह रही है कि बाघों को बचाने के लिए वह टास्क फोर्स का गठन करेगी और यही टास्क फोर्स अन्य सभी प्रकार के वन्य जीवन के संरक्षण की दिशा में भी काम करेगा। पानी और बिजली के बारे में भी पर्यावरण के अनुकूल व्यवहार करने की बात सभी राजनीतिक दल करते हैं। लेकिन इन बातों से अलग हम देख रहे हैं कि पर्यावरण कहीं मुद्दा नहीं है।

पर्यावरण अभी भी इस देश में मुद्दा इसलिए नहीं है क्योंकि हमारा पर्यावरण के प्रति जो दृष्टिकोण है वह ही हमारा अपना नहीं है। भारत में जब हम पर्यावरण की बात करते हैं तो हमें आर्थिक नीतियों के बारे में सबसे पहले बात करनी होगी। हमें यह देखना होगा कि हम कैसी आर्थिक नीति पर काम कर रहे हैं। अगर हमारी आर्थिक नीतियां ऐसी हैं जो पर्यावरण को अंततः क्षति पहुंचाती

हैं तो पर्यावरण संरक्षण की बात का कोई खास मतलब नहीं रह जाता है। हमें ऐसी नीतियां चाहिए जो स्थानीय लोगों को उनके संसाधनों पर हक प्रदान करती हों। जल, जंगल और जमीन पर जब तक स्थानीय लोगों का स्वामित्व नहीं होगा पर्यावरण संरक्षण के वादे केवल हवा हवाई वादे ही होंगे। हमें ऐसी पर्यावरण नीति को अपनाना होगा जो प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के बजाय बढ़ाने वाली होनी चाहिए। हम जब पर्यावरण के बारे में सोचें तो केवल पर्यावरण के बारे में न सोचें, बल्कि उन लोगों के बारे में भी सोचें जो पर्यावरण स्रोतों पर निर्भर हैं।

लेकिन जो राजनीतिक पार्टियां पर्यावरण संरक्षण की अच्छी-अच्छी बातें अपने घोषणापत्र में लिख रही हैं उनके एजेण्डे में आर्थिक विकास की वर्तमान नीतियां और पर्यावरण संरक्षण दोनों को बढ़ावा देने का प्रावधान है। यह विरोधाभासी है। अगर हम सचमुच अपने देश के पर्यावरण को लेकर चिंतित हैं तो हमें स्थानीय जीवन-पद्धतियों को ही नहीं स्थानीय अर्थव्यवस्था को भी बढ़ावा देना होगा। एक ऐसा राजनीतिक ढांचा तैयार करना होगा जो स्थानीय स्वशासन और प्रशासन को मान्यता प्रदान करता हो। हमें नदियों के बारे में बहुत भारतीय तरीके से सोचना होगा। अगर हम वर्तमान औद्योगिक नीतियों को ही बढ़ावा देते रहे तो हमारी नदियों को कोई नहीं बचा सकता फिर हम चाहे कितने भी वादे कर लें।

लेकिन इस देश का दुर्भाग्य ही है कि पर्यावरण के इतने संवेदनशील मसले को भी अपने तरीके से हल नहीं करना चाहते। हम जिन तरीकों की बात कर रहे हैं वे सब उधार के हैं। इसी का परिणाम है कि हम ग्रीन पार्टी की बात करते-करते ग्रीन रिवोल्यूशन को बढ़ावा देने लगते हैं। हो सकता है नयी सरकार आने के बाद यही सब फिर दोहराया जाए। □

रक्षासूत्र आंदोलन के निहितार्थ

□ सुरेश भाई

वनों के विनाश को रोकने में भारत सरकार के सन् 1983 के चिपको के साथ उस समझौते का खुला उल्लंघन माना गया है, जिसमें 1000 मीटर की ऊंचाई से वनों के कटान पर लगे प्रतिबंध को 10 वर्ष बाद यानी सन् 1994 में यह कहकर हटा दिया गया कि हरे पेड़ों के कटान से जनता के हक-हकूकों की आपूर्ति की जाएगी। जबकि सन् 1983 में चिपको आंदोलन के साथ हुए इस समझौते के बाद सरकारी तंत्र ने वनों के संरक्षण का दायित्व स्वयं उठाया था।

इसके बावजूद भी टिहरी, उत्तरकाशी जनपदों में सन् 1983-98 के दौरान गोमुख, जांगला, नेलंग, कारचा, हर्षिल, चैरगीखाल, हरून्ता, अडाला, मुखेम, रयाला, मोरी, भिलंग आदि कई वन क्षेत्रों में कोई भी स्थान ऐसा नहीं था, जहां पर वनों की कटाई प्रारम्भ न हुई हो। सन् 1994 में वनों की इस व्यावसायिक कटाई के खिलाफ 'रक्षासूत्र आंदोलन' प्रारम्भ हुआ। पर्यावरण संरक्षण से जुड़े सामाजिक कार्यकर्ताओं ने वनों में जाकर कटान का अध्ययन किया था।

यहां पर राई, मुरेंडा, खर्सू, मौरू, बांझ, बुरांस के साथ अनेकों प्रकार की जड़ी-बूटियां एवं जैव विविधता मौजूद हैं। अध्ययन के दौरान पाया कि वन विभाग ने वन निगम के साथ मिलकर हजारों हरे पेड़ों पर छपान कर रखा था। वन निगम जंगलों में रातों-रात अंधाधुंध कटान करवा रहा था। कई सामाजिक संस्थाओं द्वारा बनाई गई पर्यावरण टीम ने इसकी सूचना आसपास के ग्रामीणों को दी थी। यह सूचना मिलने पर गांव के लोग सजग हुए।

यह जानने का प्रयास भी किया गया था कि वन निगम आखिर किसकी स्वीकृति से हरे पेड़ काट रहा है। इसकी तह में देखने से पता चला कि क्षेत्र के कुछ ग्राम प्रधानों से ही वन विभाग ने यह मुहर लगवा दी थी

कि उनके आसपास के जंगलों में काफी पेड़ सूख गए हैं और इसके कारण गांव की महिलाएं जंगल में आना-जाना नहीं कर पा रही हैं।

इसमें दुर्भाग्य की बात यह थी कि जनप्रतिनिधि भी जंगलों को काटने का ठेका लिये हुए थे, जिसके कारण ग्रामीणों को पहले अपने ही जनप्रतिनिधियों से संघर्ष करना पड़ा था। इस प्रकार वन कटान को रोकने के संबंध में टिहरी-उत्तरकाशी के गांव थाती, खवाड़ा, भेटी, डालगांव, चौदियाट गांव, दिखोली, सौड़, भेटियारा, कमद, ल्वाखा, मुखेम, हर्षिल, मुखवा, उत्तरकाशी आदि कई स्थानों पर हुई बैठकों में पेड़ों पर 'रक्षासूत्र' बांधे जाने का निर्णय लिया गया था, जिसे रक्षासूत्र आंदोलन के रूप में जाना जाता है।

रक्षासूत्र आंदोलन की मांग थी कि जंगलों से सर्वप्रथम लोगों के हक-हकूकों की आपूर्ति होनी चाहिए, और वन कटान का सर्वाधिक दोषी वन निगम में आमूल-चूल परिवर्तन करने की मांग भी उठाई गयी थी। इसके चलते ऊंचाई की दुर्लभ प्रजाति कैल, मुरेंडा, खर्सू, मौरू, बांझ, बुरांस, दालचीनी, देवदार आदि की लाखों वन प्रजातियों को बचाने का काम रक्षासूत्र आंदोलन ने किया है।

ऊंचाई पर स्थित वन संपदा के कारण वर्षा नियंत्रित रहती है और नीचे घाटियों की ओर पानी के स्रोत निकलकर आते हैं। रक्षासूत्र आंदोलन के कारण महिलाओं का पेड़ों से भाइयों के जैसा रिश्ता बना है और जिस तरह चिपको आंदोलन की महिला नेत्री गौरा देवी ने जंगलों को अपना मायका कहा है, उसको रक्षासूत्र आंदोलन ने मूर्त रूप दिया है और प्रभावी रूप से वनों पर जनता के पारम्परिक अधिकारों की रक्षा का बीड़ा उठाया है।

रक्षासूत्र आंदोलन के कारण भागीरथी, भिलंगना, यमुना, टोंस, धर्मगंगा, बालगंगा आदि कई नदी जलग्रहण क्षेत्रों में वन निगम द्वारा किए जाने वाले लाखों हरे पेड़ों की

कटाई को सफलतापूर्वक रोक दिया है। यहां तक कि टिहरी और उत्तरकाशी में सन् 1997 में लगभग 121 वन कर्मियों को वन मंत्रालय की एक जाँच कमिटी द्वारा निलंबित भी किया गया था।

रक्षासूत्र आंदोलन ने 'ग्राम वन' के विकास-प्रसार पर भी ध्यान दिया। इसके अंतर्गत जहां-जहां पर लोग परम्परागत तरीके से वन बचाते आ रहे हैं और इसका दोहन भी अपनी आवश्यकतानुसार करते हैं, ऐसे कई गांवों में ग्राम वन के संरक्षण के लिए भी पेड़ों पर रक्षासूत्र बांधे गये। ग्राम वन का प्रबंधन, वितरण, सुरक्षा गांव आधारित चौकीदारी प्रथा से की जाती है।

वन चौकीदार का जीवन निर्वाह गांव वालों पर निर्भर रहता है। इसके कारण गांव वालों की चारापत्ती, खेती, फसल-सुरक्षा, जंगली जानवरों से सुरक्षा तथा पड़ोसी गांव से भी जंगल की सुरक्षा की जाती है। इससे महिलाओं के कष्टमय जीवन को राहत मिलती है। वन संरक्षण व संवर्द्धन के साथ-साथ जल संरक्षण के काम को भी सफलतापूर्वक आगे बढ़ाया गया।

रक्षासूत्र आंदोलन के चलते सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा बनाये गये हिमालयी पर्यावरण शिक्षा संस्थान ने सन् 1995 से लगातार गांव-गांव में महिला संगठनों के साथ 400 छोटे तालाब बना दिये हैं, इसके साथ ही अग्नि नियंत्रण के लिए भी स्थान-स्थान पर रक्षासूत्र आंदोलन किया है। परंतु जब से लोगों को हक-हकूक मिलने कम हुए हैं तब से वनों को आग से बचाए रखना भी चुनौती है।

रक्षासूत्र आंदोलन में मंदोदरी देवी, जेठी देवी, सुशीला पैन्थूली, सुमती नौटियाल, बसंती नेगी, मीना नौटियाल, कुंवरी कलूडा, गंगा देवी रावत, गंगा देवी चौहान, हिमला बहन, उमा देवी, विमला देवी, अनिता देवी और क्षेत्र की तमाम वे महिलाएं जो मुख्य रूप से दिखोली, चौदियाट गांव, खवाड़ा, भेटी,

बूढ़ाकेदार, हर्षिल, मुखेम आदि कई गांवों से सक्रिय योगदान दिया है।

रक्षासूत्र आंदोलन की सफलता ने वनों के प्रति एक नई दृष्टि को जन्म दिया। इसके बाद उत्तराखंड के विभिन्न इलाकों में विभिन्न मुद्दों को लेकर वन आंदोलन चलने लगे। किन्तु रक्षासूत्र आंदोलन हर वर्ष अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर वन बचाओ हेतु वन सम्मेलन करवाते हैं, जिसमें प्रत्येक क्षेत्र से कार्यकर्ताओं द्वारा वन संबंधी जानकारी उपलब्ध करवाई जाती है।

आंदोलन की खास बात यह है कि इससे जुड़े कार्यकर्ता अपने-अपने क्षेत्र में प्रत्येक वर्ष सघन वृक्षारोपण के साथ-साथ वनों को बचाने के लिए पेड़ों पर रक्षा बंधन करवाते हैं, ताकि लोगों की इन पेड़ों से आत्मीयता बँधे और वनों का व्यावसायिक दोहन न हो सके।

पिछले 15-20 वर्षों के दौरान जहाँ-जहाँ अवैध कटान किया गया है वहाँ-वहाँ रक्षासूत्र आंदोलन द्वारा गठित 'उत्तराखंड' वन अध्ययन जन समिति ने अपनी एक रिपोर्ट में उन क्षेत्रों का विस्तृत ब्यौरा दिया है तथा उत्तर प्रदेश वन निगम को प्रतिवर्ष जो करोड़ों रुपयों का लाभ मिला है, उसमें 80 प्रतिशत लाभ उत्तराखंड के वनों के कटान से प्राप्त हुआ है। गढ़वाल विश्वविद्यालय के पर्वतीय शोध केन्द्र ने रक्षासूत्र की घटनाओं पर एक पुस्तक तैयार की है।

नवसृजित उत्तराखंड राज्य में जलनीति बनाने की जोरदार वकालत रक्षासूत्र आंदोलन की टीम कर चुकी है। इसके लिए लोक जलनीति बनाकर अब तक आयी सभी राज्य सरकारें इसका स्वागत करके इसके अनुसार जलनीति बनाने का आश्वासन देती रही हैं। उत्तराखंड राज्य निर्माण के बाद रक्षासूत्र आंदोलन की टीम ने नये राज्य की रीति-नीति के लिए राज्य व्यवस्था को जनता के सुझाव कई दस्तावेजों के माध्यम से सौंपे हैं।

चिपको के बाद रक्षासूत्र आंदोलन पेड़ों के कटान रोकने तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि जल, जंगल, जमीन की एकीकृत समझ

बढ़ाने के प्रति लोगों को जागरूक भी करता आ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप उत्तराखंड नदी बचाओ अभियान एवं हिमालय नीति के विषय पर लगातार संवाद जारी है।

पेड़ों पर रक्षासूत्र बांधकर जलवायु नियंत्रण का संदेश : धरती को प्राणवायु देने वाले पेड़, पौधे एवं वनस्पतियाँ हैं। जहाँ-जहाँ पर घना जंगल हो और उसमें भी यदि चौड़ी पत्ती वाले वन की अधिकता हो, तो वहाँ पर लोगों को स्वच्छ जल, हवा और प्राकृतिक सौन्दर्य का भरपूर आनन्द मिलता है।

बदलते जलवायु के दौरान पेड़-पौधों और वनस्पतियों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। खासकर हिमालय में रहने वाले वनवासियों का जीवन जंगल के बिना अधूरा है। आज के संदर्भ में जंगलों का सबसे बड़ा उपकार जलवायु को नियंत्रित करने में है। दूसरा, पर्वतीय क्षेत्रों की बहनों को घास, लकड़ी, पानी की आपूर्ति होती है।

जहाँ-जहाँ जंगल गांव से दूर भाग रहे हैं, वहाँ पर महिलाओं को घास, लकड़ी का संकट हो गया है। इस संकट से बचने के लिए, जिस प्रकार भाई-बहन का रिश्ता बना हुआ है, रक्षा बंधन में बहनें अपने भाई के हाथों में रक्षा का धागा बाँधकर जन्म-जन्म तक के रिश्ते को मजबूत करती हैं, उसी तरह बहनें अब पेड़ों को जिन्दा रखने के लिए पेड़ों के तनों पर राखी बाँधती हैं। इसके संदेश स्पष्ट हैं कि जंगल को मायके रूप में देखने वाली महिलाओं को लगता है कि पेड़ यदि नहीं रहेंगे तो, उनकी घास, पानी, लकड़ी, खेती चौपट हो सकती है। जहाँ जंगल हैं वहाँ की कृषि भूमि में आर्द्रता है।

पहाड़ी क्षेत्रों में एक ही खेतों में बारह प्रकार की फसल उगाने में जंगलों का अद्भुत योगदान है। एक ही खेत में मंडवा, गहत, उड़द, तिल, भंगजीर, सुँटा, सोयाबीन, ककड़ी, रामदाना, कहू के साथ-साथ जंगली सब्जी कंडलिया, ढोलण, लेंगड़ा जैसी अमूल्य फसलों को लोग प्राप्त करते हैं।

आज वनों पर व्यापारिक दृष्टि होने से

बारहनाजा भी प्रभावित हो गया है। महिलाओं का जीवन संकट में पड़ गया है। बच्चों का स्वास्थ्य बिगड़ गया है। घरों में जंगली सब्जियों के अभाव में बाहर से आ रही सब्जियों के साथ तरह-तरह की बीमारियाँ गांव में पहुंच रही हैं। इसके कारण गरीब व्यक्ति की जीविका नष्ट हो गयी है। खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ गयी है।

वैश्वीकरण के कारण पोषित हो रही निजीकरण की व्यवस्था ने वनों की हजामत करके उसके स्थान पर व्यावसायिक कृषि करने की नाकाम योजनाओं को अंजाम दे दिया है। इससे एक ओर जंगल समाप्त हो रहे हैं, दूसरी ओर बाहरी बीजों से उगाई जाने वाली फसलों से खेती की उपजाऊ जमीन की ताकत जल्दी ही समाप्त हो जाती है।

मिश्रित वनों को बनाने का दृष्टिकोण वन व्यवस्था के पास नहीं है। वेतन पर आधारित वन व्यवस्था कभी नहीं चाहती है कि मिश्रित वन को तैयार करने में गांवों के साथ मेहनत की जाए।

जिन जंगलों को पालने तथा आग से बचाने में लोगों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, वह केवल वन विभाग के हाथों की कठपुतली बनाए रखने से, वे रहे-सहे जंगलों का हिसाब अब कार्बन क्रेडिट के रूप में देखने लगे हैं। अतः लोगों के बचाए जंगल का पैसा किसी और के काम आयेगा इससे बड़ा छलावा वनवासी जनता के साथ और कोई आज के जमाने में नहीं है।

अब महिलाओं ने आवाज उठाई है कि जो जंगल बचाएगा वही कार्बन क्रेडिट का मालिक होगा, इसका लाभ गांव के किसानों को सीधे मिलना चाहिए। इस समय दुनिया भर में समस्या आ गयी है कि वनवासियों को उनके वनों से अलग-थलग रखकर के पूंजीपति व कारपोरेट घरानों के लोग हरित क्षेत्र के नाम पर भी पैसा बटोरने लगे हैं। बाजारीकरण के नाम पर इसको खुली छूट है, जिसको जितना चाहिए उतनी लूट की जा रही है। □

इस खेती से मिलता है संतुलित भोजन

□ बाबा मायाराम

मध्य प्रदेश के डिण्डौरी जिले के बैगा आदिवासी पीढ़ियों से बेंवर खेती करते आ रहे हैं। घने जंगलों के बीच बसे और आदिम जनजाति में शुमार बैगाओं की अनोखी बेंवर खेती उनकी पहचान है। इससे उन्हें दाल, चावल, रोटी, हरी सब्जियां और फल मिलते हैं। कड़ी मेहनत करने वाले बैगाओं को पौष्टिक संतुलित भोजन मिलता है। हालांकि बेंवर पर रोक और बाजार के प्रभाव में बैगा एकल फसलों की ओर बढ़ रहे हैं। लेकिन बीज विरासत अभियान बैगाओं को, बेंवर को प्रोत्साहित कर रहा है।

बैगाओं के तीज-त्यौहार खेती पर आधारित हैं। जब खेती ठीक से नहीं होती तो वे त्यौहार भी ठीक से नहीं मना पाते। बीज विरासत अभियान के प्रमुख नरेश विश्वास कहते हैं कि अगर बैगाओं की फसल नहीं होती तो वे त्यौहार पर नाचा भी नहीं करते हैं। लेकिन पिछले कुछ सालों से बेंवर व मिश्रित खेती से उनके जीवन में बदलाव आ गया है। उनके पास खुद के बीज और खुद का अनाज होने लगा है।

बेंवर खेती बिना जुताई की होती है। इसका कारण एक तो यह मान्यता है कि धरती पर हल चलाने से धरती को पीड़ा होगी। वे इसे अपराध भी मानते हैं। दूसरा कारण हल चलाने से भूक्षरण होता है।

कांदाबानी गांव के गोठिया बताते हैं कि गर्मी शुरू होने पर हम खेत में पेड़ों की छोटी-छोटी टहनियों, पत्ते, घास और छोटी झाड़ियों को एकत्र कर बिछा देते हैं। फिर उनमें आग लगा दी जाती है। इसी राख की पतली परत पर बीजों को बिखेर दिया जाता है जब बारिश होती है तो पौधे उग आते हैं। जैसे-जैसे फसलें पक कर तैयार हो जाती हैं, उसे काटते जाते हैं।

कोदो, कुटकी, ज्वार, सलहार (बाजरा)

मक्का, सांवा, कांग, कुरथी, राहर, उड़द, कुरेली, बरबटी, तिली जैसे अनाज बेंवर खेती में बोए जाते हैं। लौकी, कुम्हड़ा, खीरा आदि को भी बोया जाता है। कुल मिलाकर, 16 प्रकार के अनाज को बैगा बोते हैं। इन 16 अनाजों की 56 किस्में हैं।

एक जगह पर एक वर्ष खेती की जाती है। अगले साल दूसरी जगह पर खेती होती है। इस खेती को स्थानांतरित खेती (शिफ्टिंग कल्टीवेशन) कहते हैं हालांकि इस खेती पर प्रतिबंध लगा हुआ है। लेकिन मध्य प्रदेश के बैगाचक इलाके में यह प्रचलन में है। लोग अपने ही खेतों में बेंवर करते हैं। इसका संशोधित रूप मिश्रित खेती को अपना रहे हैं।

बेंवर खेती के प्रचार-प्रसार में लगे नरेश विश्वास करते हैं कि कुछ वर्ष पहले हमने जब यह अभियान शुरू किया था तब लोगों के पास बेंवर के बीज ही खतम हो गये थे। हमने बीजों के आदान-प्रदान का काम किया जिससे अब बैगा आदिवासियों के पास ये बीज उपलब्ध हैं और वे बेंवर खेती कर रहे हैं।

विश्वास कहते हैं कि बेंवर में अधिकांश लोग केवल कुटकी करते थे। उनके पास सलहार नहीं था, बैगा राहर नहीं थी। हमने इसकी तलाश की और फिर बीजों की अदला-बदली की। छत्तीसगढ़ के पहाड़ी कोरवा आदिवासी भी यहां से मड़िया का बीज लेकर गये। कुछ जगह हमने समतल जमीन में भी जुताई से मिश्रित खेती करवाने का प्रयास कर रहे हैं। यह खेती जैविक, हवा और पानी के अनुकूल और मिश्रित है। यह खेती सुरक्षित भी है कि चूंकि इसमें मिश्रित खेती होती है, अगर एक फसल मार खा गयी तो दूसरी से इसकी पूर्ति हो जाती है। इसमें कीट प्रकोप का खतरा भी नहीं रहता। इसमें रासायनिक खाद की जरूरत नहीं होती।

यह खेती संयुक्त परिवार की तरह है। एक फसल दूसरी की प्रतिस्पर्धी नहीं है बल्कि उनमें सहकार है। एक से दूसरी को मदद मिलती है। मक्के के बड़े पौधे कुलथी को हवा से गिरने से बचाते हैं। फल्लीवाले पौधों के पत्तों में नाइट्रोजन मिलती है। ये पौधे अपनी जड़ों के जरिए भूमि से अलग-अलग गहरे से पोषक तत्व लेते हैं। इससे उर्वर शक्ति अधिक होती है।

इन अनाजों में शरीर के लिए जरूरी सभी पोषक तत्व होते हैं। रेशे, लौह तत्व, कैल्शियम, विटामिन, प्रोटीन व अन्य खनिज तत्व मौजूद हैं। चावल व गेहूं के मुकाबले इनमें पौष्टिकता अधिक होती है।

इससे दाल, चावल, पेज (सूप की तरह पेय), सब्जी सब कुछ मिलता है। खाद्य सुरक्षा के साथ पोषण सुरक्षा होती है। मवेशियों को चारा मिलता है।

चपवार गांव की भागवती कहती हैं कि बेंवर खेती में महिलाएं बहुत काम करती हैं। बीजों का रखरखाव, निंदाई, गुड़ाई, कटाई और रखवाली सभी में महिलाएं मदद करती हैं। इसके साथ घर का काम भी करती हैं।

मौसमी बदलाव के कारण जो समस्याएं और चुनौतियां आयेंगी, उनसे निपटने में भी यह खेती कारगर है। कम बारिश, ज्यादा गर्मी, पानी की कमी और कुपोषण बढ़ने जैसी स्थिति में बेंवर खेती सबसे उपयुक्त है। इस खेती पर किताब लिखने वाले नरेश विश्वास का कहना है कि सूखा अकाल में भी बैगाओं के पास कोई न कोई फसल होती है। उनकी खेती बहुत समृद्ध रही है।

इस खेती में मौसमी उतार-चढ़ाव व पारिस्थितिकी हालत को झेलने की क्षमता होती है। इस प्रकार सभी दृष्टियों, खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य सुरक्षा, जैव विविधता और मौसम बदलाव में उपयोगी और स्वावलंबी है। □

“भूख अजगरी”

□ किशनगिरि गोस्वामी

धरती पर आज सबसे बड़ी समस्या का नाम है—मनुष्य! उसकी भूख अजगरी है। वह ऐसी आकांक्षा वाला प्राणी बन गया है (सच तो यह है कि बाजारों और सरकारों ने उसे ऐसा बनाया है) कि वह अपना खून पीकर भी चेत नहीं रहा है। यहां हर किसी को द्रौपदी का बटुआ (अक्षय पात्र) चाहिए, वह भी केवल अपने लिए।

एक संन्यासी ने राजा के द्वार पहुंच कर अपने छोटे से भिक्षा पात्र को किसी भी वस्तु से भरने का अनुरोध किया। राजा के यहां भिक्षा पात्र को चावल-दाल आदि से क्यों भरा जाता! राजा ने पात्र को सोने-चांदी से भरने का हुक्म दिया। किन्तु आश्चर्य? बहुत कुछ डालने पर भी वह पात्र भरा नहीं। राजा द्वारा इस रहस्य को जानने की उत्सुकता पर संन्यासी ने कहा—राजन! यह पात्र कभी भी नहीं भरेगा, क्योंकि यह कोई सामान्य पात्र न होकर मनुष्य की खोपड़ी है। यह कभी भरती नहीं।

मनुष्य की इस अजगरी भूख ने हमारे देश में भ्रष्टाचार को बढ़ाने में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। एक सौ पचीस करोड़ भारतीय, खनिजों की भरमार, बुद्धिजीवियों की फौज, धन-कुबेरों की प्रचुरता, उद्योगों की धूम एवं भारतीय मस्तिष्क की विश्व स्थापित श्रेष्ठता होते हुए भी, भुखमरी, बेरोजगारी, अशिक्षा और लाचारी से लड़ता हमारा देश भारत—यह सोचने पर मजबूर करता है कि आखिर खामी कहां है? और इसके लिए उत्तरदायी कौन है? हमारा शासन-प्रशासन या हम और आप। पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी की कल्पनानुसार हम “परिश्रमी भारत, पराक्रमी भारत एवं विजयी भारत का निर्माण” न जाने कब कर पायेंगे? आजादी के 63 वर्ष पश्चात भी हमारे देश में ढांचागत सुविधाओं की बेहद कमी है। महानगरों में भी बिजली की आंख-मिचौली

और बिना सड़क के रास्ते देखे जा सकते हैं। गांव तो दरकिनार, महानगरों में भी सीवर लाइनें नहीं बन पायी हैं। पीने योग्य पानी की आज भी भीषण समस्या है। यह निश्चित ही गंभीर बात है कि हमारे देश में आखिर इतनी बढ़हाली क्यों है? और देश का वास्तविक रूप में विकास क्यों नहीं हो रहा है?

अब भ्रष्टाचार हमारे देश में आम लोगों की कार्य संस्कृति बन गया है। अतः अब भ्रष्टाचार का कोई मुखर विरोध नहीं करता बल्कि कहीं-कहीं तो भ्रष्टाचार को शिष्टाचार में स्वीकार करने की मौन स्वीकृति दी जा चुकी है। चपरासी से लेकर अफसर तक, विधायिका से न्यायपालिका तक (और अब तो सेना तक भी), चारों ओर भ्रष्टाचार का बोलबाला है। विश्व भर में भ्रष्टाचार भारत की पहचान बन गया है। हम बात करते हैं—शहीदों की चिताओं पर मेला लगाने की, लेकिन मौका मिलते ही, उनके ताबूतों की खरीद और दलाली खाने या उनकी विधवाओं को मिलने वाले मकानों को हड़पने से नहीं चूकते हैं।

आज का भारत अफ्रीका के किसी ऐसे नवजात और भ्रष्ट समाज का दर्शन कराता है, जहां किसी भी क्षेत्र में ईमानदारी बची ही न हो। हाल ही के कुछ ताजा उदाहरण देखें—साठ से सत्तर हजार करोड़ रुपये के घोटाले का दायरा रखने वाला कॉमनवेल्थ गेम्स घोटाला, जिसमें दिल्ली सरकार से लेकर प्रधानमंत्री कार्यालय के अधिकारियों पर शक की सूई घूम रही है। 2जी स्पेक्ट्रम घोटाला भारत के अंकेक्षक एवं महासर्वेक्षक (सी.ए.जी.) की रपट के अनुसार एक लाख इकहतर हजार करोड़ रुपये के दायरे में है। ऐसे घोटालों के बाद भी देश के विकास का ढिंढोरा पीटा जा रहा है। हाल ही बिहार विधानसभा चुनावों में विकास की जीत बताने वालों के गाल पर क्या यह करारा चाँटा नहीं है कि निर्वाचित

243 विधायकों में से 143 दागी हैं।

देश के बहुसंख्यक लोग इसके लिए भ्रष्टाचार को दोष देते हैं। क्या भ्रष्टाचार केवल राजनीति और प्रशासनिक व्यवस्था में ही व्याप्त है? वास्तव में ऐसा नहीं है। आज देश ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार के शिकंजे में इस कदर जकड़ा हुआ है कि चाहे यहां की जनता का धन हो, चाहे विश्व बैंक या दुनिया की दूसरी वित्तीय एजेंसियों द्वारा सहायता के रूप में प्राप्त धन, इन सबका बड़ा हिस्सा देश के विकास कार्यों में खर्च न होकर, भ्रष्ट नेताओं और अफसरों की व्यक्तिगत पूंजी बढ़ा रहा है। भ्रष्टाचार हमेशा प्रजातंत्र के मूल्यों को नष्ट करता है। आर्थिक विकास में रुकावटें पैदा करता है और सरकार की न्याय और बराबरी (समानता) की मुहिम को कमजोर करता है। इससे निजात पाने के लिए शासन-प्रशासन को अपनी कार्य-प्रणाली बदलनी होगी, उसमें पारदर्शिता लानी होगी।

गांधीजी ने कहा था—“सृष्टि में हरेक व्यक्ति की जरूरत पूरी करने की क्षमता है, किन्तु वह एक भी व्यक्ति की हवस पूरी नहीं कर सकती है।” इसलिए मनुष्य की यह अजगरी भूख ‘संतोष’ करने पर ही मिट सकती है। भारत में साधु-संन्यासियों का सम्मान इसीलिए किया जाता है कि वे ‘जो है’, उसका उपयोग करने की कला तो जानते ही हैं और ‘जो नहीं है’ उसका भी आनन्द उठाना जानते हैं। संतोषी सदा सुखी। वास्तव में सच्चा सुख अर्जन में नहीं, विसर्जन में है। भोग में नहीं, त्याग में है। अगर हम अपने भोग की मर्यादा नहीं रखते हैं तो दूसरों के साथ, समाज के साथ टक्कर लाजिमी है। जो भोग सबको नहीं मिल सकता, उसे भोगने का हमें कोई अधिकार नहीं है, यह भावना सबके मन में स्थिर होनी चाहिए। तभी मनुष्य की अजगरी भूख मिट सकती है, तभी भ्रष्टाचार समाप्त हो सकता है। □

पूँजीवाद का यथार्थ

□ कश्मीर उप्पल

ब्रिटेन, फ्रांस, पुर्तगाल, स्पेन और हालैण्ड जैसे अनेक यूरोपीय देश जिस समय नये-नये उपनिवेश स्थापित कर रहे थे, ठीक उसी समय वे आपसी युद्धों में भी व्यस्त थे। इसी दौरान यूरोप में दो तरह की क्रांतियाँ हो रही थीं। एक वैज्ञानिक और दूसरी वैचारिक। हाब्सन के अनुसार पूँजीवाद के विकास में सबसे प्रमुख भौतिक घटक मशीनें थीं। जेम्स वाट द्वारा भाप से मशीनें चलाने के आविष्कार के फलस्वरूप ब्रिटेन संसार का सबसे अधिक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया था। जेम्स वाट और मैथ्यू वाल्टन ने सन् 1785 और 1800 के बीच भाप के 280 एंजिन बनाये थे। इनका उपयोग कई उद्योगों और भाप से चलने वाले जहाजों में किया गया था। भाप से चलने वाले इंजनों की ताकत से ही ब्रिटेन ने फ्रांस, स्पेन और हालैण्ड आदि को युद्ध और व्यापार दोनों में हराया था। औद्योगिक क्रांति के दौरान ही ब्रिटेन की अधोसंरचना स्थापित हुई थी। इसके अंतर्गत महत्वपूर्ण नगरों, बंदरगाहों, आंतरिक जल, रेल, सड़क आदि के साधनों का विकास हुआ था।

ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति में 'के' का फ्लाइंग शटल, हारग्रीब्ज की स्पिनिंग जैनी, रिचर्ड आर्कराइट का वाटरफ्रेम, क्रॉम्पटन का म्यूल, एडमंड कार्टराइट का पावरलूम आदि प्रमुख थे। इन मशीनों के चलन से ही कारखाना-पद्धति उत्पादन-प्रणाली की नींव पड़ी थी। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्रों का विकास, बैंक और बीमा संस्थानों का जन्म, संयुक्त पूँजी कंपनियों का उदय और कृषि का यंत्रीकरण जैसे बड़े परिवर्तन हुए। औद्योगिक क्रांति से एक और बड़ा परिवर्तन यह हुआ कि इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का कार्य व्यापारियों के हाथों से निकलकर उद्योगपतियों के हाथों में आ गया।

इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति सन् 1760 में शुरू हुई थी जबकि यूरोप के अन्य देशों में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इसका

प्रभाव पड़ना शुरू हुआ था। 19वीं शताब्दी के अंत में अमेरिका, जर्मनी और जापान ने ब्रिटेन के औद्योगिक नेतृत्व को चुनौती दी। सन् 1776 में संयुक्त राज्य अमेरिका ने स्वयं को ब्रिटेन की सत्ता से मुक्त कर लिया था। अमेरिका में स्वतंत्रता के बाद नई पूँजी मुख्यतः राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय यातायात और व्यापार में लगायी गयी। अमेरिका के समुद्री जहाजों ने ही सर्वप्रथम ब्रिटेन की सामुद्रिक शक्ति को चुनौती दी थी।

अमेरिका में सन् 1869 में अमेरिकी महाद्वीप के एक कोने से दूसरे कोने तक जाने वाली पहली रेल लाइन बनकर तैयार हो गयी थी। इसी के साथ अमेरिका में भी आर्थिक विकास हेतु एक सुदृढ़ आर्थिक ढांचा बनकर तैयार हो गया था। वर्तमान में अमेरिका ही पूँजीवादी देशों का नेतृत्व कर रहा है। 19वीं शताब्दी के अंत तक अमेरिका ने औद्योगिक क्षेत्र में प्रत्येक यूरोपीय देश को पीछे छोड़ दिया था। यह कहा जाता है कि पूँजीवाद की जड़ें ब्रिटेन की भूमि में हैं परन्तु वह अपने वास्तविक स्वरूप में अमेरिका में जीवित है। अमेरिका को पूँजीवाद का 'नर्व सेंटर' (स्नायुतंत्र) माना जाता है।

पूँजीवाद को प्रथम विश्वयुद्ध के बाद सन् 1929 की विश्वव्यापी आर्थिक मंदी ने और द्वितीय विश्वयुद्ध ने प्रमुख रूप से प्रभावित किया। जॉन वैजे के अनुसार पूँजीवाद का भविष्य निरंतर परिवर्तन होती तकनालॉजी में निहित है। पूँजीवाद की विशाल उत्पादन क्षमता की कार्ल मार्क्स ने भी एक प्रकार से प्रशंसा की है। कार्ल मार्क्स के अनुसार 'मुश्किल से अपने एक शताब्दी के शासनकाल में पूँजीपति वर्ग ने जितनी शक्तिशाली और प्रचंड उत्पादक शक्तियाँ उत्पन्न की हैं, उतनी पिछली तमाम पीढ़ियों में मिलाकर भी सामने नहीं आयी हैं।'

आज पूँजीवादी व्यवस्था एक ओर उभार पर भी है और दूसरी ओर वह संकट में भी है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ओबामा के हेल्थकेयर कानून 2010, बैंक, बीमा और

रीयल स्टेट के संकट नये रूप में इसे प्रभावित कर रहे हैं। गौरतलब है कि इन संकटों को अमेरिकी शासकीय सहायता द्वारा हल करने की कोशिश समाजवादी व्यवस्था के मॉडल का अनुकरण करने की प्रक्रिया लगती है। वैसे पूँजीवादी व्यवस्था में सरकारी नियंत्रण कोई नयी बात नहीं है। पूँजीवादी व्यवस्था में सुधार लाने के लिए पूँजीवादी देशों में भी कई तरह के नियंत्रणों का उपयोग किया जाता है। परन्तु इन नियंत्रणों को केन्द्रीय नियोजन नहीं कहा जा सकता। उदाहरणस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका में 1934 तक संरक्षणत्मक तटकर लगाया गया। राष्ट्रपति निक्सन ने सन् 1991 में स्वर्णकोषों में निरंतर कमी को रोकने तथा मुद्रा प्रसार में कमी करने के लिए मजदूरी और कीमतों पर प्रभावी नियंत्रण लगा दिये थे। लेकिन आज अमेरिका विकासशील देशों के इन्हीं कदमों का विरोध करता है।

अमेरिका और यूरोप के पूँजीवादी देशों में औद्योगीकरण केवल इन देशों के आर्थिक विकास में परिवर्तन का साधन नहीं रह गया है। आज के पूँजीवाद ने एक देश के भीतर और बाहर की दुनिया को आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक रूप से बदलना शुरू कर दिया है। पूँजीवाद के प्रथम चरण में बड़े पैमाने के उत्पादन ने बाहरी बाजारों की खोज को आवश्यक बनाया था। पूँजीवाद के दूसरे चरण में बड़े पैमाने के उत्पादन के साथ-साथ तकनीकी एकाधिकार ने बाहरी बाजारों पर नियंत्रण को स्थापित कर दिया है। इसी 'खोज' और 'नियंत्रण' में विश्व संकट के बीज छिपे हैं।

विश्व की वर्तमान स्थिति पर महान सहित्यकार ओक्तवियो पाज का यह कथन सर्वोत्तम टिप्पणी है "विचारधाराएं समाज के चेहरे पर पड़ा हुआ छद्म परदा हैं और यह परदा धीरे-धीरे उठ रहा है। विचारधाराओं का युग समाप्त हो रहा है और अब हम यथार्थ को अधिक निकट से देख सकते हैं।" (सप्रेस)

प्रकृति की स्नेहकन्या : प्योली

□ राधा बहन

यह वर्षों पुरानी बात है। तब कुमाऊँ की पहाड़ियों पर मनुष्यों की बस्ती बहुत कम थी; अधिकांश पर्वत श्रेणियाँ, उनकी चोटियाँ तथा घाटियाँ और उनके गदहेरे (नाले) तथा गैरें (उपत्यकाएं) घने जंगलों से भरी थीं। उपजाऊ जमीन के सुन्दर क्षेत्रों में भरी-पूरी जनता रहती थी और उनके राजा होते थे आजकल के छोटे-मोटे जमींदारों जैसे।

ऐसा ही एक राजा वह वीरसिंह था। अपने नाम के अनुसार सिंह की तरह वीर भी और उदार भी; परन्तु अपने पिता से भी एक कदम आगे था उनका इकलौता कुमार, शील, सौन्दर्य व वीरता की खान ही था वह। जनता में उसकी उदारता व सहृदयता की कई बातें प्रचलित थीं।

कुमार शिकार का शौकीन था। हफ्तों जंगलों में भटकना उसे बहुत पसंद था। इसी तरह एक रोज वह अपने घोड़े पर सवार होकर राजमहल से निकल पड़ा, बिना किसी साथी व संगी के। बस्ती से दूर निर्जनता के सौन्दर्य ने उसे बाँध लिया। वह कभी नदी के तट की घनी झाड़ियों में घूमता तो कभी पर्वत की तलहटी में कलकल बहती छोटी नदी के आसपास के घने जंगलों में। अन्य दिनों उसे कहीं बाघ, कहीं घुरड़, कहीं कांकड़ (मृग की जाति के जानवर), कहीं भालू, कहीं जड़या (बारहसिंगा) के दर्शन हो ही जाते थे और वह पहले उनके नैसर्गिक सौन्दर्य से अपनी आँखों को तृप्त करके पीछे अपने अचूक निशाने से उन्हें आ बेध देता था। पर आज न उसे ये बड़े जानवर मिले न प्रकृति माता की गोद में खेलने वाले छोटे बच्चों की तरह वे जीव, सफेद शँसों (खरगोशों) की वह उछल न मल्याओं (जंगली कबूतरों) की वह कतार; और तो दूर कहीं झाड़ियों के बीच कुकुटों (मुर्गियों) की फड़फड़ाहट भी उसने सुनी नहीं। हाँ, जगह-जगह उसे बन्दरों की सेना की सेना दिखती रही। वे अपने बच्चों

को अपनी छाती से चिपकाये चीड़ के ऊंचे-ऊंचे वृक्षों पर इस पेड़ से उस पेड़ पर किलकिलाते हुए छलांगें भर रहे थे, या तो धरती पर बैठ कुछ जड़ें कुरेद रहे थे। पर उन्हें क्या मारता? वे तो हनुमान के प्रतिनिधि हुए न?

जब तक चारों ओर नदियों और स्रोत की कलकल थी, धरती की श्यामल हरियाली थी, और वृक्षों की गम्भीर साँय-साँय थी, तब तक कुमार थका नहीं, किन्तु अचानक ही उसे एक रूखा-सूखा प्रदेश मिला, सीधी ऊंची चट्टानें और उन पर छोटी-छोटी अधसूखी घास, कहीं पेड़ का नाम ही नहीं; तब नदी व स्रोत तो आये कहां से? उस विकट राह पर घोड़े की पीठ पर बैठा कुमार थक गया और उसका घोड़ा प्यास से हाँफ गया। अब कुमार को भूख, प्यास व थकान तीनों साथ ही सताने लगीं। परन्तु पर्वतों के उस भयंकर सौन्दर्य की सीमा ही नजर न आती थी। एक के बाद एक धार (चोटी) आती ही जाती। आखिर कुमार ने सब कुछ ईश्वरेच्छा पर छोड़ दिया। उसका घोड़ा लड़खड़ा रहा था, और राह ऐसी थी कि घोड़े का चलना मुश्किल थी। वह घोड़े पर से उतर पड़ा। लगाम थामे किसी तरह उस चट्टानी दुर्गम राह को पार करने लगा।

जब अपना प्रयत्न, अपनी मानवीय शक्ति निःशेष हो जाती है तब ईश्वरीय हाथ की दैवीय-शक्ति की सहायता मिलती है। कुमार एक धार पर लड़खड़ाते पाँवों से बढ़ रहा था। घोड़ा भी अपने स्वामी के पदचिन्हों पर पाँव डाले जा रहा था जब कि उसमें चलने की कोई शक्ति न थी। उस शिकार के शौकीन को शायद ऐसी ही मृत्यु बदी थी। वह ठोकर खाकर गिर पड़ने वाला था, परन्तु सँभला और धार पर आकर उसने लम्बी साँस लेने को पाँव रोके, आँखें ऊपर कीं। ओह! यह क्या? अद्भुत। आश्चर्य से उसकी आँखें चमक

उठीं। सामने ऊंची दुर्गम चट्टानों के बीच एक हरा-भरा वन्य प्रदेश था। उसी के बीच एक पर्वतीय निर्झर चांदी से चमकते पानी की कलकल में मग्न था। कुमार के कदमों में शक्ति आयी और न मालूम क्यों उस घोड़े के कदमों में भी शक्ति आ गयी। शायद अपने स्वामी के प्रति उसकी स्नेह की अनुभूति इतनी प्रबल थी कि कुमार के हृदय को ताकत मिलते ही इसके हृदय की नसों में भी मानो विद्युत-शक्ति प्रवाहित हो गयी।

अब कुमार झरने के सामने घने वृक्ष की छाया में पड़ा था। झरने के जल ने उसमें प्राण भर दिया, और उसकी भूख की कलकलाहट के बावजूद भी वह हरी घास पर अपनी थकी टाँगों को फैलाये आराम कर रहा था। घोड़ा पास ही हरी घास चर रहा था। कुमार का मन सोच रहा था; “काश! मैं भी घोड़ा होता।”

तभी किसी मधुर संगीत-स्वर ने उसके कानों को चौकन्ना कर दिया। वह अभी गरदन उठाकर उधर देखने ही वाला था कि “गुर् र् र् र्...” की भयंकर दहाड़ ने उसके कान के पर्दे फाड़ डाले। मौत को इतने निकट देखकर कुमार निश्चेष्ट-सा हो गया। उसे उठने या भागने की हिम्मत ही न रही। पहला क्षण बीता, दूसरा क्षण बीता, वह मौत की प्रतीक्षा कर रहा था, तभी किसी की मधुर किन्तु दृढ़ आदेश भरी आवाज गुँजी, “शेर भैया!” और शेर ने आँखें नीची कर लीं।

कहां तो कुमार मौत की घड़ियाँ गिन रहा था, कहां अब वह जीवन से ओतप्रोत हो गया। वनकुमारी ‘प्योली’ को देखकर तो वह मुग्ध ही रह गया। कैसा अद्भुत, अछूता सौन्दर्य, और साथ ही पर्वतीय झरने की तरह स्वच्छन्द बहने वाला, कभी न सूखने वाला स्नेह का स्रोत जो उसकी आँखों व वाणी से छलका पड़ता था। ‘प्योली’ ने अपने आसपास इकट्ठे बन्दरों, उछल-कूद करते शँसों, मस्ती

से झूमते भालुओं, छल्लों भरते काँकड़ों और कुमार की ओर रोषभरी दृष्टि से घूरते शेरों को सम्बोधित करते हुए कहा—“देखो भाइयो। ये हमारे वन क्षेत्र में आये हैं अतः ये हमारे अतिथि हैं न? इनको कोई कष्ट नहीं पहुँचाना, इनका सत्कार करना हमारा कर्तव्य है।” फिर रुक कर कहा—“ये भूखे लगते हैं बानर भैया! क्या तुम लोग इनके लिए कुछ फल ले आओगे?” दिखने में असभ्य किन्तु दिल के परम सुसभ्य बानर खुशी से नाच उठे। किलकारियाँ भरते, खुशी में एक-दूसरे को धक्का देते, नाचते हुए पलभर में न मालूम कहां गायब हो गये।

कुमार को प्योली के साथ रहते एक सप्ताह बीत गया पर उसे उस जंगल को छोड़ अपने महलों में जाने का जी नहीं होता था। प्योली का स्नेह भी उसे बाँध चुका था। उसे आश्चर्य यह देखकर कि किस प्रकार प्योली ने उन वन्य जन्तुओं को अपने स्नेह के वश में कर लिया था। वह सोचता, मैं इन पशुओं को मारता था, तीरों से बेधता था, गोली से उड़ाता था पर यहां प्योली ने इन्हें अपना परिवार ही मान लिया है। अब प्योली का परिवार मेरा परिवार है, मैं कभी इन पर शस्त्र नहीं उठाऊंगा।

“मां कितनी चिन्ता करती होंगी? पिताजी मेरी खोज में कितने परेशान होंगे?” इन प्रश्नों से कुमार अस्थिर हो उठा, “प्योली! अब मैं राजमहल को लौटता हूँ” कुमार ने प्योली से एक दिन कहा।

“हां तुम्हें जाना तो होगा ही, पर कुमार, फिर कब आओगे?” प्योली को भी अब उसके बिना रहना भा नहीं रहा था।

“किन्तु प्योली, तुम भी साथ चलो न? हम कुछ दिन वहां साथ-साथ रहकर शीघ्र यहां लौट आयेंगे। पिताजी व मां को बता कर आयेंगे तो उन्हें चिन्ता भी न होगी।” कुमार इस बात पर अड़ ही गया।

प्योली टालती रही। उसे अपने साथी पशुओं को छोड़ना कठिन हो रहा था। इसी असमंजस में फिर कितने ही दिन बीत गये। आखिर कुमार की जिद ही जीत पायी। प्योली

ने उसके साथ जाना स्वीकार किया पर बानर बिलखने लगे, भालू आंसू बहाने लगे, शेर उदास मुंह बैठ गये। सभी मनाने लगे, “हमें छोड़कर न जाओ।” कुमार बोला—“अच्छा, चलो इन्हें भी साथ ले चलें। मैं इन लोगों के लिए एक बड़ा-सा बाड़ा बनवा दूंगा, उसमें ये आराम से रहेंगे।” पर वे स्वतंत्रता प्रेमी पशु साफ ‘ना’ कह गये। “किसी भी कीमत में हम अपनी आजादी नहीं गंवायेंगे।”

प्योली आज जा रही थी। उस वन प्रदेश के सारे पशु उदास मुख, आंसू बहाते, जंगल की सीमा तक उसे पहुँचाने गये। बानर तो उसके पांवों पर लिपटे जा रहे थे, शँसों की मनोहर आंखें रो-रोकर लाल हो गयी थीं, भालू अपने लम्बे बालों भरे पंजों से आंसू पोंछ रहे थे, शेर गम्भीर मुख लटकाये मौन चल रहे थे। सबने सीमा पर आकर प्योली का आँचल फूलों व फलों से भर दिया। आंसुओं की झड़ी के बीच प्योली मुश्किल से कह पायी—“मैं जल्दी ही आऊंगी।” उस वन प्रदेश का केवल एक ही प्राणी कम हुआ। पर लगता था मानो सारा जंगल ही वीरान हो गया।

प्योली ने राजमहल में आकर सबको अपने स्नेह से सोह लिया पर स्वयं उसे वहां रहना किसी तरह आकर्षक न लगा। वह महल के ऊंचे बर्ज पर चढ़कर रोज जंगल की ओर देखती रहती। शायद उस एकांत में वह अपने जंगल के साथियों के लिए रो लेती थी। उसकी आंखों की वह स्नेहिल स्वाभाविक चमक धीरे-धीरे लुप्त हो गयी। उसके कपोलों की अरुणिमा, पीलेपन में बदलती गयी, उसके उछलते स्वास्थ्य की प्रसन्नता को मुरझाते हुए कुमार भी देखता था, पर जब प्योली कहती—‘अब जंगल चलें’ तब वह राज्य कार्यों की व्यस्तता की मजबूरी भरी लम्बी कहानी सुना देता। प्योली क्षीण होती गयी। और आखिर में उसने बिस्तर पकड़ लिया। दिन भर प्योली केवल जंगल के ही स्वप्न देखती और शाम को जब कुमार उसके सिरहाने पर बैठ कर पूछता तो प्योली फिर जंगल ही जाने का आग्रह करती। कुमार ने

दवायें दीं, वैद्य बुलाये, पर जानते हुए भी प्योली की सही दवा वह कर नहीं सका।

दिन बीतते गये। एक दिन प्योली ने कहा—“मैं अब न बचूंगी। पर मेरे मरने के बाद मुझे सामने की उस पर्वत चोटी पर दफना देना, बाँज वृक्षों की घनी छाँह में अपने हाथों से मेरी समाधि बना देना, रोज ताजे पानी का एक घड़ा ले जाकर मेरी कब्र को सींचना। उससे एक अंकुर फूटेगा, उसको पालना और उस पर खिलने वाले फूल को स्नेह से नाम देना, ‘प्योली’।” यह कहते-कहते उसने अपने जंगल व जंगलियों की याद में प्राण दे दिये।

कुमार ने वही किया। जीते जी प्योली का कहना वह नहीं मान पाया पर मरने के बाद उसके अक्षर-अक्षर का वह पालन करता रहा। वह सुबह उठ कर ताजे पानी का घड़ा अपने कन्धे पर रखकर उस पर्वत पर चढ़ जाता, सूर्य देव की पहली अरुण रश्मियाँ जब बाँज के झुरमुटों के बीच से झाँकने लगतीं तब कुमार प्योली की कब्र पर पहुँच जाता। पानी का घड़ा भरा ही रह जाता, वह अपने आँसुओं से ही सींच देता उस कब्र पर उगने वाले छोटे से अंकुर को। धीरे-धीरे उस छोटे से अंकुर पर कोमल पत्तियाँ आ गयीं, और तब एक दिन उस पर एक नाजुक-सा पीला फूल खिल उठा। उसकी पंखुड़ियाँ इतनी कोमल थीं मानो प्योली का कोमल गात ही सामने आ खड़ा हो।

आज की फागुन व चैत में जब वसंत की ऋतु धीरे-धीरे कदम बढ़ाती हुई सामने प्रस्तुत होती है तब बाँज के जंगलों की ढलानों पर प्योली के असंख्य फूल पीली चादर ही बिछा देते हैं। लगता है उस रुग्ण पीले मुख वाली प्योली के एक चेहरे के बदले अनेक, असंख्य चेहरे झाँक उठे हों। सुबह जब सूर्य की अरुणिमा कोमल किरणें उन पुष्पों को स्पर्श करती हैं तब कुमार के आँसू की एक-दो बूँदें भी हम देख सकते हैं उन चिकनी पीली पंखुड़ियों पर। उन करुण सुन्दर फूलों की बहार आज भी प्रतिवर्ष हमें स्नेह की उस विचित्र कथा की याद दिला देते हैं। □

भूमि-सुधार को लाल झंडी

□ भारत डोगरा

अक्टूबर, 2012 में जब ग्रामीण विकास मंत्री जयराम रमेश ने विशेष तौर पर आगरा में एकता परिषद् के 'जन-सत्याग्रह' में जाकर समझौते पर हस्ताक्षर किये, तो उम्मीद जगी थी कि लंबे अंतराल के बाद एक बार फिर भूमि-सुधार का एजेंडा आगे आयेगा और ग्रामीण भूमिहीन परिवारों को भूमि व भूमि-अधिकार प्राप्त होंगे। इस समझौते के आधार पर ही ग्वालियर से दिल्ली मार्च कर रहे 60 हजार से अधिक सत्याग्रही आगरा से ही एक बड़ी उम्मीद लेकर लौट गये।

इस समझौते के बाद सरकार ने भूमि संबंधी कुछ निर्देश जारी भी किये हैं। परंतु ऐसा कोई बड़ा बदलाव नहीं आया है, जिससे देश के सबसे निर्धन परिवारों को कोई बड़ी सहायता मिले। भूमि सुधारों की नयी समग्र नीति तैयार होकर सरकार के पास पड़ी है लेकिन अभी सरकार ने इसे जारी नहीं किया है। कहा जा रहा है कि इसके लिए सभी राज्यों के राजस्व मंत्रियों की बैठक बुलानी होगी। दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कदम आवास भूमि के अधिकार का है। इसके कानून का मसौदा भी तैयार पड़ा है, जो अभी तक संसद में पेश नहीं हो सका है।

स्पष्ट है कि सरकार चाहे पूर्ण निष्क्रिय न रही हो, पर उसने महत्वपूर्ण मुद्दों पर देरी की है। इस देरी व अधूरे मन से कार्य करने के कारण जो उम्मीदें भूमि सुधारों के संदर्भ में जागृत हुई थीं, वे एक बार फिर धूमिल पड़ रही हैं।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन संस्थान (वर्ष 2003-04) के भूमि-स्वामित्व वितरण के आँकड़ों के अनुसार नीचे के 80% ग्रामीण परिवारों के पास मात्र 22% भूमि है।

श्रेणी	ग्रामीण	परिवार
भूमिहीन	31.12	0
0.4 हे. से कम	29.82	5.11
0.4-1 हे.	18.97	16.89

1-2 हे.	10.68	20.47
2-3 हे.	4.22	13.94
3-5 हे.	3.06	16.59
5-10 हे.	1.6	15.21
10 हे. से अधिक	0.52	11.77

भारत में भूमि वितरण (एन.एस.एस.ओ., 2003-04)।

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि नीचे के 60 प्रतिशत व विशेषकर सबसे नीचे के 31 प्रतिशत परिवारों में भूमि वितरण बहुत आवश्यक है।

दूसरी वजह यह है कि इस जरूरत के बावजूद भूमि सुधार सरकार की प्राथमिकताओं से पीछे खिसकते रहे हैं। इसे सरकार ने स्वयं स्वीकार भी किया है। दसवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में योजना आयोग ने कहा कि भूमि पुनर्वितरण के संदर्भ में नवीं योजना के अंत में स्थित वही थी जो योजना के आरम्भ में थी। दूसरे शब्दों में नवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान इस क्षेत्र में कोई प्रगति नहीं हुई। यह दस्तावेज स्पष्ट कहता है, "छिपाई गयी भूमि का पता लगाने व उसे ग्रामीण भूमिहीन निर्धन परिवारों में वितरण करने में कोई प्रगति नहीं हुई।" इतना ही नहीं, यह दस्तावेज स्वीकार करता है, "लगता है कि सन् 1990 के दशक के मध्य से भूमि-सुधारों को पृष्ठभूमि में धकेल दिया गया। हाल के समय में राज्य सरकारों की पहल इस ओर रही है कि भूमि कानूनों का उदारीकरण हो ताकि बड़े पैमाने पर कारपोरेट कृषि को बढ़ावा मिल सके।"

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में भूमि संबंधी मुद्दों का आधार तैयार करने के लिए योजना आयोग ने एक कार्यबल नियुक्त किया था। इस कार्यबल ने स्पष्ट कहा है, "लगता है आर्थिक उदारीकरण शुरू होने के बाद सरकार की भूमि-सुधार में रुचि लुप्त हो गयी। इतना ही नहीं अपनी रिपोर्ट में इसने स्पष्ट शब्दों

में कार्यबल कहा है—“भूमि हदबंदी (लैंड सीलिंग) की सीमा को बढ़ाने या इस कानून को समाप्त करने के लिए एक मजबूत लॉबी सक्रिय है।” यह रिपोर्ट आगे कहती है—“1980 के दशक के मध्य में जब से भारतीय अर्थव्यवस्था में गुपचुप उदारीकरण का प्रवेश होने लगा व वर्ष 1991 से तो यह एक तूफान की तरह छा गया। इसके पश्चात भारतीय नीति निर्धारण के रडार स्क्रीन से भूमि-सुधार गायब हो गये या भूमि-सुधारों को भुला दिया गया। सरकार में बाजारवाद की वकालत करने वाले इन भूमि-सुधारों के बारे में बात भी नहीं करना चाहते ताकि कहीं भूमि के सौदागर इस क्षेत्र में सरकार की भूमिका से घबरा न जायें। सत्तर के दशक में केन्द्रीय निर्देशों पर आधारित जो भूमि-सुधार लाये गये थे वे इन बाजारवादियों को न केवल अनचाहे अवरोध लग रहे हैं बल्कि भूमि के बाजार में पूंजी के खुले खेल के लिए एक मुसीबत प्रतीत हो रहे हैं।”

भूमि-सुधारों की इस बढ़ती उपेक्षा के बीच में ही 'जनादेश' व 'जन-सत्याग्रह' अभियानों का महत्व स्पष्ट हो सकता है। इन अभियानों में एकता परिषद के साथ मिलकर सैकड़ों जन संगठनों ने भूमि-सुधारों की मांग को बुलंद किया व इसके लिए देशभर में पदयात्राएं हुईं। सर्वप्रथम 25 हजार व दूसरी बार 1 लाख लोगों का लंबा मार्च हुआ जिसके फलस्वरूप अक्टूबर, 2012 में आगरा समझौता हुआ। इसके बावजूद भूमिहीनों को कोई बड़ी राहत नहीं मिली जबकि दूसरी ओर सरकार विदेशी कंपनियों को भूमि देने का मन बना चुकी है।

यदि सरकार अब भी अपनी भूमि-सुधारों को उचित महत्व न देने की नीति जारी रखती है तो इससे ग्रामीण निर्धन वर्ग में असंतोष फैलेगा और साथ में गरीबी और भूख दूर करने के प्रयासों पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। (सप्रेस)

विचार-सौरभ

प्रमाण बिना निर्णय भी हिंसा है

□ प्यारेलाल

गांधीजी के खयाल से विभाजन की छाया इस बात की निशानी थी कि कांग्रेसजनों में पर्याप्त अहिंसा नहीं थी। उन्हें कांग्रेसी कार्यकर्ताओं में यह वृत्ति देखकर खेद होता था कि आलोचनाओं से वे चिढ़ते थे और जो उनसे मतभेद रखते हैं, उनकी नीयत पर शक करते हैं। गांधीजी उन्हें यह समझाने का कोई मौका नहीं चूकते थे कि सत्याग्रही में कितना उच्च कोटि का सार विवेक और संयम होना चाहिए और अहिंसा का आदर्श उनके दैनिक संबंधों में उनसे क्या-क्या आशाएं रखता है। उन्होंने कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के एक दल से कहा, “विज्ञान में ऐसे तराजूओं का उपयोग होता है जिनसे रेत के एक दाने से दस लाखवें भाग का अंतर भी मालूम हो जाता है। इसी प्रकार सत्याग्रही को अपने भीतर ऐसी नैतिक शक्ति (संवेदनशीलता) पैदा कर लेनी चाहिए कि सत्य और अहिंसा के आदर्श से बाल के दस लाखवें भाग जितना भी विचलित होने का पता लग जाये। उसे किसी व्यक्ति के प्रति व्यक्तिगत पूर्वाग्रह या भावना में बहना नहीं चाहिए।

“इसी प्रकार कोई व्यक्ति उसकी टीका करे तो, उसे टीकाकार को अपना विरोधी नहीं मानना चाहिए अथवा उस पर यह दोषारोपण नहीं करना चाहिए कि वह व्यक्तिगत पूर्वाग्रह अथवा अरुचि से ऐसा करता है। मतभेद के कारण ऐसा नहीं होता कि मित्र हमारा मित्र न रह जाए, भाई-भाई न रह जाए या मां-मां न रह जाए। सत्याग्रही को तथ्यों की परीक्षा और जाँच वैज्ञानिक जैसी सावधानी और तटस्थता के साथ करनी चाहिए। पूरे प्रमाण के बिना किसी निर्णय पर पहुंचना हिंसा है। कारण, अनुभव बताता है कि कभी-कभी जो चीज पहले-पहले देखने से हमें स्पष्ट प्रतीत होती है, वह बाद के अनुसंधान में गलत मालूम हो सकती है। इसलिए सत्य और अहिंसा के पुजारी को कोई चीज मानकर नहीं चलना चाहिए। बल्कि सब दृष्टिकोणों के लिए अपना मस्तिष्क खुला रखना चाहिए। उसे अपने दृष्टिकोण में जागृत और वैज्ञानिक रहना चाहिए तथा सतत सत्य की शोध में लगे रहना चाहिए। इस वैज्ञानिक

तटस्थता के साथ सहानुभूति का गुण भी मिला रहना चाहिए। कारण, सहानुभूति रखने का अर्थ ही समझना है।”

भारतीय राजाओं को ही लीजिए, “उनकी निन्दा करने से कोई लाभ नहीं। वे जैसे हैं वैसे परिस्थितियों ने उन्हें बनाया है। उन्हें हम प्रेम से जीत सकते हैं। सहानुभूतिपूर्ण समझ से कठोरतम पूर्वाग्रह भी दूर हो सकते हैं। शुरू में ब्रिटिश अधिकारी चार्ल्स एन्ड्रूज को गहरे अविश्वास की नजर से देखते थे, कभी-कभी वे उनके साथ असभ्य व्यवहार भी करते थे। परन्तु एन्ड्रूज को कभी रोष नहीं आया। वे प्रयत्न करते रहे और उन्होंने भी आशा नहीं छोड़ी। अंत में ब्रिटिश अधिकारियों को अपनी भूल मालूम हो गयी और उसके लिए उन्हें अफसोस हुआ।”

गांधीजी ने कुछ उत्कट भावनापूर्ण उपदेश स्त्रियों को, हिन्दू और मुसलमान दोनों को दिये थे। उन्होंने उनसे कहा : ‘अपनी लाचारी आप छोड़ दीजिए। आपके लिए कायर अथवा भीरु होना अपने सौंपे हुए ट्रस्ट (विश्वास) को धोखा देना है। आप अबला नहीं हैं। भारत के प्राचीन इतिहास में अद्वितीय वीरांगनाओं के उज्ज्वल उदाहरण भरे हैं।’ हिन्दू स्त्रियों की एक मंडली से, जो उनसे मिलने आयी थी, गांधीजी ने कहा, “आप आज देश की शकल बदल सकती हैं, यदि आप अपनी परम्परा के प्रति सच्ची हों। आपको ईश्वर ने जो महान शक्ति, कष्ट न पहुंचाकर स्वयं कष्ट सहन करने की शक्ति और अडिग रहकर अन्याय का प्रतिकार करने की शक्ति दी है, उसे काम में लेने का साहस आपमें होना चाहिए।”

“मेरा हृदय स्त्रियों के लिए रोता है, क्योंकि साम्प्रदायिक पागलपन में सबसे अधिक कष्ट उन्हीं को सहन करने पड़े हैं। परन्तु मुझे लगता है कि उन्हें दोष से सर्वथा मुक्त नहीं माना जा सकता। यदि वे माताओं, पत्नियों और बहनों के नाते पुरुषों पर अपना प्रभाव पूरी तरह डालतीं, तो जो शर्मनाक करतूतें हुईं, उन्हें रोका जा सकता था। इसके बजाय कुछ स्त्रियों ने अपने पुरुषों द्वारा मुस्लिम स्त्रियों के प्रति किये गये अपराधों के लिए यहां तक कहा कि जो कुछ

मुसलमानों ने किया उसका यह उचित बदला है। मुस्लिम स्त्रियों ने भी ऐसा ही किया। मैं उन्हें चेतावनी देता हूँ कि उन्होंने अपने प्रियजनों को घर से बाहर जिस ‘नीतिमत्ता’ का आचरण करने के लिए प्रोत्साहन दिया है, उसी ‘नीतिमत्ता’ का जब वे अपने घर में भी वरण करेंगे तब उसके बुरे फल उन्हें भोगने पड़ेंगे। मैं उस लज्जाजनक दृश्य को देखने के लिए जिन्दा नहीं रहना चाहता, जब स्त्रियां भारत की प्राचीन संस्कृति को कीचड़ में सानने का साधन बनेंगी।”

कुछ समय बाद पर्दानशीन मुस्लिम औरतों का एक दल गांधीजी से मिलने आया। गांधीजी ने उनसे कहा : स्त्रियों के पतन का कारण यह है कि उनमें श्रद्धा का हास हो गया है। प्रार्थना को अंधविश्वास समझा जाता है। उसकी हंसी उड़ाने का भी फैशन हो गया है। परन्तु अहिंसक ढंग से मरने की कला के लिए श्रद्धा का साहस चाहिए और मनुष्य में श्रद्धा प्रार्थना से ही आती है। “आप ईश्वर को किसी भी नाम से पुकार सकती हैं तत्त्व एक ही है। उससे एक ही नियम प्रकट होता है।” प्रेम की शक्ति का प्रमाण एक घरेलू उदाहरण से मिलता है, जिसे आप सब जानती हैं। माता-पिता लड़की को एक बिलकुल अनजान आदमी के साथ ब्याह देते हैं। वह जिस परिवार में रहने जाती है उसी को अपना बना लेती है। वह जल्दी ही नये घर की स्वामिनी बन जाती है। यह सब उसके प्रेमपूर्ण हृदय के कारण सम्भव होता है। उसका संपूर्ण आत्मसमर्पण और प्रेम सबके हृदयों को जीत लेता है। यदि स्त्रियां अपने इस प्रतिदिन के अनुभव का उपयोग समाज के संबंध में करें, तो समाज पर उनका वैसा ही शासन चलेगा जैसा एक नवयुवती का अपने परिवार पर चलता है। यदि मुस्लिम स्त्रियां हिन्दू स्त्रियों को अपनी बहनें मानना सीख लें, तो दोनों ऊपर उठेंगी। “आपकी यह प्रार्थना होनी चाहिए कि भगवान आपको वह बल दे, जो प्रार्थना और आत्मोत्सर्ग से प्राप्त होता है, ताकि आप अपने देश की सेवा कर सकें और मौका आने पर देश के लिए मर सकें।” □

(पूर्णाहुति : खंड 3 से साभार)